कारण उसपर रेगूलेशन नम्बर ३ लग सके। प्रार्थी प्रतिज्ञा पूर्वक किन्तु बलसे कहता है कि महाराज एडवर्डके भारत राज्यमें उसकी गिरफ्तारीके समय वा उससे पहिले वा पीछे किसी तरहकी अशान्ति फैलनेका भय प्रस्तुत न था।

प्रार्थी प्रतिज्ञा पूर्वक किन्तु रेख खींच कर कहता है कि उसने कोई काम ऐसा न किया न करनेका विचार किया कि जिससे भारतमें अशान्ति हो और उसके विरुद्ध रेगूलेशन नं० ३ सन् १८१८ चल सके।

प्रार्थीको विश्वास है कि वह उन असत्य रिपोर्टोंका जो उसके शत्रुओंने कीं, आखेट हुआ, और उसके विरुद्ध जो रिपोर्टें राज-पदाधिकारियोंकी वह समझ-ब-कृत्यकी भूलपर आधार रखती थीं।

प्रार्थी सप्रतिज्ञा विनय करता है कि उसे उन दोषोंकी सूचना दीजाय कि जिनके आधार पर उसके प्रतिकूल उक्त रेगूलेशनके अनुसार व्यवहार किया गया है जिससे उसे प्रतिवादका अवसर मिले और प्रतिज्ञा-मूर्त्ति कौंसलमें इस विषय पर अधिक विचार कर सकें।

प्रार्थी सदा शान्ति प्रिय रहा है और उसकी चेष्टाओंका बृहत् भाग स्वदेशवासियोंकी शिक्षोन्नति और पितृ विहीनों, विधवाओं और अन्य अकालपीड़ितोंकी सहायता प्रस्तुत करनेके लिये पुण्यार्थ धन एकत्र करनेमें लगा है। महत भूकम्पके अवसर पर १९०५ में इसने कांगड़े जिलेके दुखियोंके सहायता पहुंचानेका प्रबन्ध किया था। वह तीन वर्ष तक म्यूनिसिपेल कमिश्नर रह चुका है और पच्चीस वर्षसे वकालत कर रहा है।

अपने पबलिक जीवनमें जो पच्चीस वर्षसे अधिकका है। प्रार्थीपर अबतक कभी किसी ऐसे कृत्यका सन्देह नहीं किया गया और न कोई ऐसा कृत्य अब तक उसके साथ सम्बन्धित किया गया कि जो भारतमें अशान्ति फैलानेका कारण हो, न कभी उससे ऐसा कोई कृत्य घटित हुआ है कि जिस पर रेगूलेशन नं० ३ सन् १८१८ लग सकता हो।

प्रार्थीको यकृत और आमाशयकी पीड़ा है यदि सन्देह हो तो उसके चिकित्सकोंसे लाहोरमें निश्चय किया जा सकता है।

इस दशामें एक परदेश और प्रतिकूल जल वायुमें जहां कि व्यायामके लिये भी पर्य्याप्त अवसर और साधन प्रस्तुत न हों, प्रार्थीको बांध रखना उसके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव उत्पादन करेगा।

प्रार्थी विनय करता है कि यदि उसे शीघ्र छोड़ा नहीं जाता तो उन घटनाओंकी उसे सूचना दी जाय जिनके आधारपर उसके विरुद्ध यह व्यवहार किया गया है और उसकी विनयपत्रिका राजराजेश्वरकी सेवामें भेजदी जाय। जबतक इस प्रार्थनापर व्यवस्था न दी जाय :—

(क) हिन्दुस्तानी व अंग्रेजी समाचारपत्रोंके पढ़नेकी अनुमति दी जाय क्योंकि पत्र पढ़नेकी अनुमतिसे वञ्चित होनेके कारण एकान्तवास दुखमय प्रतीत होता है।

(ख) घरसे नौकर मँगवानेकी अनुमति हो।

यदि प्रार्थीको बन्धन कालके विस्तारकी सूचना दी जायगी तो वह कृतज्ञ होगा।

'लाजपतराय' गढ़ इफरन (मांडले)

२९ जून १९०७ ई०

लालाजीने पुनर्वार क्रूर रेगूलेशन नं० ३ पढ़नेके अभिप्रायसे घरसे मँगाया था। इसे पढ़कर सुपरि० को भी चिन्ता हुई कि उसे लालाजीकी बाबत् एक रिपोट प्रथम जूलाईको भारतसरकारके पास भेजनी होगी। सुपरि०ने आपसे पूछा कि यदि कोई प्रार्थनापत्र राजमें भेजना हो तो दे दो, मैं अपनी सिपारसके साथ भेज दूंगा। लालाजीने कहा कि गढ़के बाहर मुझे फिरनेकी अनुमति मिलनी चाहिये और पुलिसका कठोर पहरा कम किया जाय और मेरे मित्रवर्ग मुझसे मिलने पावें। सुपरि०ने प्रतिज्ञा की कि मैं यथाशक्ति विचार करूंगा।

रेगूलेशनके लेखानुसार कि-'प्रत्येक राजकर्म्मचारीको जिसके अधिगत कोई राज-बन्दी किया गया होगा, उचित होगा कि गवर्नर जनरल-इन-कौंसलकी सेवामें बन्दीके चालचलन और सुख स्वास्थ्यके सम्बन्धमें राजनैतिक विभागके सिकत्तरकी मारफत रिपोर्ट भेजे।' सुपरि० ने लालाजीका प्रार्थनापत्र अपनी रिपोर्टके साथ चलता कर दिया।

६ अगस्तको इस विनयका जो उत्तर सुपरिण्टे० ने लालाजीको सुनाया उसकी प्रतीक लालाजीको मिली। इसमें लिखा था :—

'राजकी व्यवस्था है कि आप गढ़के बाहर फिरनेको नहीं जा सकते, पहरा कम नहीं किया जा सकता, प्रार्थनापत्र अस्पष्ट है।'

'रही बात यह कि तुम पर क्या अपराध लगाया गया है, उसकी तुम्हें सूचना दी जाय, इस सम्बन्धमें सरकारसे जो प्रकाशित किया गया है उससे अधिक विवरण देनेको गवर्नमेण्ट सम्मत नहीं है।" अर्थात् राजमें अशान्ति रोकनेके लिये आप बन्धनमें लिये गये हैं।

'राजाको जो विनय भेजनी हो वह पञ्जाब सरकार द्वारा भेजनी चाहिये। समाचार पत्र व निजका नौकर आप नहीं मँगा सकते।'

'कब तक बन्धनमें रक्खे जाओगे यह नहीं बतलाया जा सकता।'

'आपके सम्बन्धी यदि मिलें तो कोई बात भारी आपत्तिकी नहीं है, किन्तु ऐसे मिलन और मिलने वालोंकी संख्या परिमित होगी। और पञ्जाब सरकारकी अनुमतिसे ही मिलना हो सकेगा।'

लालाजीको ज्ञात था कि यही उत्तर मिलना है किन्तु सम्बादपत्रोंकी बाबत आज्ञा मिलनेकी कुछ

आशा थी। टहलनेकी बाबत आप अधिक चिन्तित न थे। किन्तु यह बड़े हँसीकी बात थी कि लाला-जीका प्रार्थना-पत्र इस वास्ते राजेश्वरके पास न भेजा गया कि वह ठीक द्वारसे न गया था। क्योंकि लाला-जीके पास तो एक मात्र द्वार सुपरि० जेलको दे देना था, सरकारी अधिकारियोंको चाहिये था कि जानते कि किनके द्वारा कैसे उसे भेजना चाहिये और वैसा ही करते। लेकिन भारतका राज-काज विलक्षण रीति पर चलता है अधिकारी वर्ग मनमानी करते हैं, कोई पूछनेवाला नहीं। १८८३ के इलबर्ट बिलके समयसे आज तक प्रजाकी स्थिति जैसी थी वैसी ही बनी है कोई पूछनेवाला नहीं, फिर राजबन्दियोंका तो कहना ही क्या था इस उत्तरसे अनुमान यही होता था कि स्यात अपने दोष छिपानेके लिये अधिकारी वर्ग लालाजीकी प्रार्थना राजेश्वर तक जाने देनेमें टाल-मटोल करते थे और इसी कारण यह बे सिर पैर उत्तर मिला।

ऐसा भी अनेकबार देखा जाता है कि भूल तो राजकर्मचारी करते हैं और उसका फल मुकदमें वाली प्रजा उठाती है इसीके भीतर यह बात भी

समझनी चाहिये। इन्हीं भावोंको लेकर लालाजीने फिर राजराजेश्वरको मेमोरियल भेजनेका विचार छोड़ दिया, सुपरि० जेलने कहा भी तो आपने टाल दिया। आप कहते हैं कि रावलपिण्डीके अभियुक्तोंकी जांच पड़ताल होरही थी उनपर दबाव डाला जा रहा था, मुझे उपद्रवमें लपेटनेकी चेष्टा होरही थी। राजकर्मचारियोंको भरोसा था कि वह कुछन कुछ मेरे विरुद्ध अवश्य ढूंढ निकालेंगे। मैं तो शेष जीवन इसतरह बितानेको तय्यार हूं ही, तब जल्दी क्या है।"

सितम्बरमें सुपरि० जेलने आपको एक समाचारपत्र दिया उससे ज्ञात हुआ कि उनपर देशी सेनाको राजके विरुद्ध उभारनेका दोष आरोपित किया जारहा है। लालाजीको यह बात निस्सन्देह बहुत बुरी लगी क्योंकि यह आपकी मानहानि करनेवाली बात थी। अतः लालाजीने अब एक दूसरा मेमोरियल स्टेट सिकत्तरके नाम भेजनेको तय्यार किया वह यों था:—
माननीय सेक्रेटरी आव स्टेट फार इण्डियाकी सेवामें।
श्रीमान्,

प्रार्थी राजबन्दी होकर ब्रह्मदेशगत मांडलेमें बन्द है। प्रार्थीको ९ मई १९०७ को रेगूलेशन नं० ३ सन्

१८१८ के अनुसार वारण्ट द्वारा पकड़ा गया है। पकड़नेके समय या उसके पीछे प्रार्थीको यह नहीं बतलाया गया कि उसे किस अपराधमें पकड़ा गया है।

प्रार्थीने एक मेमोरियल (विनय) बड़ेलाटकी सेवामें भेजी थी कि प्रार्थीने कभी ऐसा अपराध नहीं किया जिसके कारण उसपर रेगूलेशन नं० ३ की कार्य्यवाही उसके साथ की जा सके।

प्रार्थीने कोई ऐसा काम नहीं किया न किसी ऐसे कामके करनेकी चेष्टा की कि जिससे राजराजेश्वर-शासित भारत-राज्यमें अशान्ति फैलनेका भय हो, और प्रार्थीके पकड़े जानेके समय किसी प्रकारकी अशान्ति फैलनेकी कदाचित् कोई सम्भावना न थी।

प्रार्थी अपने शत्रुओंकी असत्य सूचना और पदाधिकारियोंकी भूल और एक पक्षी रिपोर्टोंके फन्देमें फांसा गया है। यदि उसे उसके निर्वासनके कारण प्रकाशित किये जावें तो प्रार्थी उनकी बाबत् भीमान्का सन्तोष कर सकता है।

क्योंकि प्रार्थीको उसके अपराधोंसे सूचित नहीं किया गया अतः वह अपनी निर्दोषिताके सम्बन्धमें कुछ अधिक समाधान नहीं कर सकता।

प्रार्थीको सम्बादपत्रोंके अविलोकनसे वञ्चित किया गया है अतः वह भारत सरकारके कल्पित कारणोंका प्रतिवाद नहीं कर सकता तथापि यह साहसपूर्वक कहा जा सकता है कि रेगूलेशन नं० ३ का प्रयोग प्रार्थीके विरुद्ध सर्वथा न्याय असङ्गत और अनावश्यक है क्योंकि इसके अनुसार कार्य्यवाही करनेका कोई अवसर न था। उक्त रेगूलेशन संस्थापित शासनके समयके लिये नहीं है न इसका अभीष्ट प्रार्थीकीसी स्थितिके लोगोंके लिये प्रयोग करना था। रावलपिण्डी अथवा लाहौरके उपद्रवोंसे प्रार्थीका कोई सम्बन्ध न था, न इसने प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी व्यक्तिको उपद्रव करनेका आन्दोलन किया, न इसने कोई उपद्रवजनक वक्तृता ही की। अपने भावोंके प्रकाशन और कतिपय राजनियमोंके सम्बन्धमें जो उसके पकड़े जानेके कुछ पहिले निर्म्मित हुए थे और जिनसे जनपदके मनोंमें अशान्ति उत्पन्न होरही थी, अपनी अप्रसन्नता प्रकाशनमें प्रार्थीने न्याय और शासन-प्रणालीकी नियमित सीमाओंको कभी उल्लङ्घन नहीं किया और न कभी राज-नियम-विरुद्ध कृत्य या बलके दिखलानेकी सम्मति दी। और न जान-बूझकर किसी

व्यक्तिसे सम्बन्ध ही रखा कि जो न्यायविरुद्ध कृत्य या शक्तिके संदर्शनका पक्षपाती हो। यह सन्देह कि प्रार्थीने देशी सिपाहियोंको राजप्रेमसे फेरनेकी चेष्टाकी सर्वथा निर्मूल है और जांच पड़ताल करनेसे यह बात सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो सकती है। प्रार्थीको सिपाहियोंसे मेल मिलाप या पत्र व्यवहारका कोई अवसर ही प्राप्त न था। दोषोंकी सूचना दिये विना प्रार्थीको स्वतन्त्रतासे वञ्चित करने, व प्रतिवादका अवसर दिये विना पकड़कर निर्वासित करने, गुप्त रिपोर्टोंपर काम करने और राजनियमसम्बन्धी सम्मत दाताओंकी सम्मतिसे वञ्चित करनेमें भारतसरकारने न्याय व नीतिको विचारमें नहीं लिया, यद्यपि यह बृटिश-राजका प्रधान स्वाभाविक गुण माने जाते हैं।

प्रार्थीके पास यह बात विचारनेके यथेष्ट कारण प्रस्तुत हैं कि जो रेगूलेशन प्रार्थीके विरुद्ध प्रयुक्त किया गया है वह ईष्टइण्डिया कम्पनीका एक न्याय पद्धति विपरीत अनुशासन (कानून) है और उन अधिकारोंका अतिक्रमण है जो उक्त कम्पनीको राजकीय प्रतिज्ञा-प्रमाणपत्रके अनुसार प्राप्त थे। वह बृटिश शासनपद्धति और बृटिश अनुशासनोंके विरुद्ध है, इस-

लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। इस अनुशासनकी स्वीकृति भी पार्लमेण्टसे नहीं प्राप्त की गई। रेगूलेशनके ही अनुसार प्रबन्धकर्तृ-शासन-विभागके स्थैर्यके लिये यह अधिकार कि विना न्यायालयमें प्रतिवादका अवसर दिये ही वृटिश प्रजाको किसी स्वतन्त्रतासे वञ्चित किया जाय, प्रकृतिमें ही न्याय और पद्धति विशिष्ट राजके अभीष्टके प्रतिकूल है। रेगूलेशनके अनुसार उस रेगूलेशनके निर्दिष्ट मनोर्थ प्राप्तिके लिये किसी व्यक्तिको, जिसे न्यायालयमें प्रतिवाद करनेका अवसर न दिया गया हो, बन्धनमें रखनेका अभिप्राय उस व्यक्तिको अशान्ति फैलानेसे रोकना है न कि दण्ड देना। इस भावके आधार पर समाचारपत्रोंके पढ़ने और निज नौकर रखने या अपने वर्गका कुआर (Cook) मँगानेकी आज्ञा देनेसे इनकार करना भारत सरकारका न्याय सङ्गत कृत्य कहलाने योग्य नहीं है। प्रार्थीको इस भावकी वीप्सामें आगा पीछा नहीं है कि मित्रोंको मिलनेकी आज्ञा न होना और कुटुम्बियोंसे मिलनेमें पहिले पञ्जाब सरकारकी अनुमति प्राप्त करनेका प्रतिबन्ध और ऐसे सम्मिलनोंमें राजकर्मचारियोंकी उपस्थित

भी उचित और न्याय सङ्गत आज्ञाओंमें सामिल नहीं। उपर्युक्त प्रबन्ध, इङ्गलैण्डके राजनैतिक बन्दि-योंके साथ साधारण बर्ताव और पार्लीमेण्टके ऐसे अनुशासनोंके, जो विना छान बीन किसीके निरीक्षण गत रखनेके सम्बन्धमें हैं, सर्वथा प्रतिकूल है। प्रार्थी कुटुम्बी पुरुष है, एक स्त्री व कई बच्चोंकी (जिनमें एक विधवा लड़की और उसका दूध पीता बालक भी सामिल है) सुध लेने व शिक्षा देने आदिका भार उस पर है। कल्पित अशान्तिका भय मिट जानेके पीछे प्रार्थीको बन्धन गत रखना किसी दशामें भी उचित नहीं।

प्रार्थीको विश्वास है कि उसके साथ न्याय होगा जिसके लिये बृटिश सरकार प्रसिद्ध है और बन्धमो-चन करके प्रार्थीको अपने घर आने और अपना काम काज करनेकी आज्ञा दी जायगी। यदि प्रार्थीका **बन्ध-मोचन विना प्रतिबन्धके असम्भव** हो और घर जानेकी आज्ञा देना अनुचित हो तो प्रार्थीको एक नियत समयके लिये भारतसे बाहर इङ्ग-लैण्ड या योरोप या अमरीकाके किसी प्रान्तमें रहने-

की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय, प्रार्थी इसके निमित्त आशीर्वाद करता रहेगा।

श्रीमानोंका सेवक—

लाजपतराय

मागडले-इफरनगढ़, २२ सितम्बर १९०७

इस प्रार्थनाका भी लालाजीको कोई प्रत्युत्तर न मिला। ११ नवम्बरको बन्धन मुक्त होनेका समाचार कमिश्नरके द्वारा आपको मागडलेमें मिला। जिसका प्रतिपालन पूरा २ लाहौर पहुंचकर हुआ। यही अन्तिम विनय पत्रिकाका प्रत्युत्तर मान सकते हैं। इस रेगू-लेशनकी समुचितालोचना 'लेजर एगड सोर्ड' नामकी पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं। यह ईस्ट इण्डिया कम्पनीका इतिहास है।

पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये कि लाला-जीको किसी प्रतिबन्ध या प्रतिज्ञाके ऊपर नहीं छोड़ा गया न उनके भविष्यत्के वर्त्तावकी बाबत कोई प्रति-बन्ध लगाया गया। डिपटी कमिश्नर मागडलेने चलते समय लालाजीसे, राजाज्ञा सुनानेके उपरान्त अपनी ही इच्छानुसार सावधान किया था। गवर्नमेगटकी ओरसे कुछ भी लिखा पढ़ी या कहा सुनी नहीं हुई।

लालाजीके प्रति उनके देशवासी ।

१-एक दिन आप सड़कपर जारहे थे कि वर्षा हो पड़ी। लालाजी छाता न ले गये थे। एक बूढ़ा सिक्ख जो वहां हीं कहीं पर नौकर था छाता लिये आपके पाससे निकला, लालाजीको देखकर पहिचानते ही उसने अपना छाता आपको देना चाहा, आपने धन्यवाद पूर्वक इनकार कर दिया।

२-एक दिन प्रातः पहर भर दिन चढ़े उपरान्त लालाजी अपनी छतके बरामदेमें बैठे पढ़ रहे थे। आप उठे तो, एक लकड़हारे पथिकपर दृष्टि जा पड़ी। वह काष्ठ विक्रेता पूर्वी द्वारपर जा रहा था, वहां उसने लकड़ी धरतीपर डाल अपनी पगड़ीके पल्लेसे दो कमलके फूल खोले। यह फूल वह आपके ही लिये लाया था व देना चाहता था। उस द्वारपर कोई पहरू न था अतः वह पश्चिम द्वार पर गया और वहांके सन्तरीसे दोनों फूल लालाजीके पास पहुंचानेको कहा। सन्तरी नट गया और उसे वहांसे हटा दिया। थोड़ी दूर जाकर वह एक पेड़के नीचे खड़ा हो लालाजीकी ओर देखने लगा। उसकी प्रेम भरी दृष्टिको लालाजी देख रहे थे उसने लाला-

जीकी ओर देख दोनों पुष्प पेड़के स्कन्धपर रख दिये और हाथ जोड़कर नमस्कार की और चला गया। थोड़ी देर बाद आपने अपने मदरासी नौकरको भेज कर यह फूल मंगवा लिये। लालाजी कहते हैं कि "यह फूल मेरे लिये मेरे देशबन्धुके प्रेमके अङ्क थे"।

३-एक दिन दो बम्बईके नाखुदा मुसलमान सौदागर जो (इन्हें हम लोग बोरा या खोजा मेमन कहते हैं) चाल ढाल व वस्त्रमें बड़े प्रतिष्ठित दीखते थे, आंख फाड़े बरामदेकी ओर देखते जाते थे, लालाजीको देखकर इन्होंने मस्तकपर हाथ रखकर सलाम किया तब अपने मार्गकी ओर ध्यान किया व चले गये। ऐसी बातें अनेकोंबार हुई हैं।

४-प्रायः भद्र लोग अस्वारियोंपर आते और आपके निवासके सन्निकट पहुंचकर गाड़ी बहुत धीमी कर देते व बरामदेकी ओर देखते जाते। जबतक आपको देख कर अभिवादन न कर लेते गाड़ी वेगसे न हांकते।

५ पञ्जाबी ललनाएं भी आपके दर्शनको कम न आती थीं।

६-अनेकबार ग्वाल-बच्चे आपके निर्वासनके गीत गाते सुने गये।

७-एक दिन आप हस्पतालमें नेत्र-परीक्षार्थ गये थे। सरजनने अपने सहकारी सरजनसे आपको परिचित कराकर तानेसे कहा कि लाजपतराय पार्लीमेण्टरी अर्थात् शासन और ओट देनेका अधिकार स्वराज्य स्वत्व मांगते हैं, आपकी क्या सम्मति है? ऐ० सरजनने कहा कि "मैं राजनीतिका ज्ञाता नहीं हूं इसलिये कुछ नहीं कह सकता"। इसपर लालाजीने कहा कि "क्या आप नहीं चाहते कि कर लगाने और करकी आय व्यय करनेमें आपके देशवासियोंकी सम्मतिका हाथ हो। यह बात वर्तमानमें नहीं है।" इसने उत्तर दिया-"निस्सन्देह"। इस उत्तरको सुनकर सरजन खिसिया गया। और कहने लगा कि भारतमें पूरा पूरा प्रतिनिधि शासन सम्भव नहीं, क्योंकि यहा विभिन्न जाति विभिन्न भाषाओंके बोलनेवाले प्रस्तुत हैं। इसने बङ्गाली ऐ० सरजनको समझाना चाहा कि आप बङ्गाली व पञ्जाबी दोनों एक नहीं हैं। लालाजीने कहा "यह ठीक नहीं है, हम दोनों एक ही कुल व एक ही धर्मके हैं, हमारी दोनोंकी भाषाएं एक ही संस्कृतसे निकली हैं।" एसिस्टेण्ट सरजन लालाजीकी पक्ष लेता था। यह बात सरजनको भली

न लगती थी क्योंकि वह देखता था कि एक बङ्गाली और फिर सरकारी कर्म्मचारी पञ्जाबीके अनुकूल है, और कोई प्रत्यक्ष अन्तर दोनोंके भावोंमें नहीं है।

श्रीयुत सरदार अजीतसिंहजी महोदय।

सरदार अजीतसिंहजी भी माण्डलेके इसी गढ़में निर्वासित करके रक्खे गये थे, लालाजीको इनके आनेका पता जिस दिन यह आये उसी दिन लग गया था तथापि राजकर्मचारी यह समझते थे कि लालाजीको इस बातका पता नहीं। जब लालाजीको पूर्वीय मार्ग पर टहलनेसे रोका तभी लालाजीको सन्देह हो गया था कि अजीतसिंहजी आगये, इसीसे इन्हें उधर जानेसे रोका गया है। फिर लालाजीने एक दिन इन्हें छतपर टहलते देख लिया था और साथ ही सुपरिण्टेण्डेण्टने एक दिन लालाजीको पुकारा तो भूलसे अजीतसिंह कहकर पुकार उठा, इस दशामें लालाजी कैसे रञ्जीतसिंहकी प्रस्तुतिसे अनजान रह सकते थे। एक बात और भी थी कि सारजण्टने लालाजीसे पूछा कि क्या आप जानते हैं कि अजीतसिंह कहां हैं। लालाजीने कहा कि तुम लोग मुझसे अधिक जानते होगे कि वह

कहां हैं। इसपर सारजण्टने मुसकराकर कहा कि वह भी इसी गढ़में हैं। और भी अनेक पुलिस सिपाही सरदार साहबका कथन खुलमखुला करते थे। सरदार अजीतसिंह भी लालाजीके साथ ही छूटे। दोनों एक ही गाड़ीसे लाहौर लाकर छोड़े गये किन्तु सारे मार्गमें यही चेष्टा राजकी ओरसे होती रही कि एक दूसरेका अपने साथ होना न जान सकें। सरदारजीके प्रति भी जहां तक हम जानते हैं प्रजाका बहुत प्रेम है क्योंकि उन्होंने भी जो कुछ किया उसमें उनका निजका स्वार्थ न था और जो किसी आत्मस्थ देशमें आप होते तो इस तरह कष्ट उठाना न पड़ता।

लालाजीका माण्डलेसे प्रस्थान।

११ नवम्बरको आप माण्डलेसे १० बजे चले, इन्हें कमिश्नर द्वारा बतलाया गया कि आप मुक्त किये जाते हैं किन्तु लाहौरमें स्वतन्त्र किये जाओगे वहां तक निरीक्षणमें ही जाना होगा और तब तक न किसी इष्ट मित्रसे मिलने पाओगे न किसीको तार चिट्ठी भेज सकोगे। बड़े लाटकी ओरसे आपको यह भी कहा गया है कि फिर कभी कोई ऐसी भूलका काम न करना नहीं तो तुरन्त तुमको निर्वासित किया जायगा। पौने ग्यारह बजे

गाड़ी जानेको थी आपने बिस्तर कपड़े बांधे और जेलके सुपरिण्टेण्डेण्टसे हाथ मिलाकर गाड़ीपर सवार हुए और पूर्ववत पहरेके भीतर स्टेशनपर पहुंचे।

रेलपर आपसे पुलिस सुपरि० ने हाथ मिलाया, लालाजी प्रथम श्रेणीकी गाड़ीपर आसीन हुए। लालाजीने सरदार अजीतसिंहके ऊपर नियत निरीक्षक सारजण्टको देखकर जान लिया कि वह भी इसी गाड़ीमें हैं, किन्तु जब सुपरि० पुलिससे पूछा तो उसने बात टाल दी और कहा कि स्यात वह दूसरी गाड़ीमें भेजे जायँगे, लेकिन वह उसी ट्रेनकी एक दूसरे दरजेकी गाड़ीमें बैठे थे।

मार्गमें स्टेशनोंपर भीड़ होती, लोग जानना चाहते कि स्पेशलमें कौन जाता है परन्तु यह बात सबसे छिपाई जाती थी। १२ नवम्बरको गाड़ी रंगूनके सैनिक बोर्डिंग स्टेशनपर पहुंची यहांसे गाड़ीपर सवार होकर कठिन पहरेमें उसी जहाजके स्टेशनपर पहुंचे जहां कि पहिले उतरे थे और नावपर बैठे। पुलिस कमिश्नर रंगूनने इन्हें नावके नीचले भागमें और सरदारजीको छतपर बैठाकर जहाजपर पहुंचा दिया। जहाजपर पहुंचकर लालाजीको एक कोठरी दी गई

ओर-पासकी दो कोठरीमें दो सारजण्ट ठहरे, सरदार अजीतसिंहको जहाजकी छतपर स्थान मिला। प्रातः ७ बजके १० मिनटपर पोतने प्रस्थान किया। दो दिन समुद्र चापल्य करता रहा तीसरे दिन शान्त हुआ। इसवार जहाजके पदाधिकारी सभ्यता और प्रसन्नतासे वर्त्ताव करते थे। लालाजी मिस्टर कूपर एडीशनल चीफके स्वभावकी बहुत प्रशंसा करते हैं।

१५ नवम्बरको तीन बजे तीसरे पहर 'फ्रेजर' पोत दीखा, लालाजीको कोठरीके भीतर जानेको कहा गया क्योंकि जहाज लङ्गड़ डालने वाला था इस समय, गुप्त रखनेके निमित्त सरदार अजीतसिंहको भी कोठरीमें चले जानेको कह दिया गया। दोनों जहाजों अर्थात 'फ्रेजर' और 'गाइड'के कप्तानोंमें परस्पर सवाद परिवर्त्तन हुआ और आध घण्टेके पीछे पुनः गाइडने लङ्गड़ उठाया और साढ़े सात बजे सायङ्कालको हुगलीके मुहानेमें घुसकर सागर ज्योतिःस्थलके सामने रातके लिये लङ्गर डाला साढ़े पांच बजे फिर जहाजने लङ्गर उठाया और दूसरे दिन प्रातः डायमण्डहारबर पार होकर दस बजे कलकत्तेके सन्निकट १२ कोसके अन्तर पर रायपूर पहुंच गया। रायपुरमें ४॥ बजे तक रह

कर कलकत्तेकी ओरको लङ्गर उठा। १६ नवम्बरको सायङ्कालमें जहाजने बजबजमें लङ्गर किया और हम सब आरोही उतरे और भारतीय जल छोड़ अपनी पवित्र मातृ अवनीकी गोदमें पुनः लोकमान्यजीको बैठनेका सौभाग्य मिला।

एक स्पेशल ट्रेन बंगाल नागपूर रेलवे लैनपर एक ओरको खड़ी थी। बंगाल-पुलिस-इन्स्पेक्टर मिस्टर मेथ्यू जहाजसे उतरते ही इनके साथ आ मिले थे। एक पहिली श्रेणीकी गाड़ी लालाजीको पहरुओं सहित बैठनेको मिली और सरदारजी दो सारजण्टों सहित दूसरी श्रेणीकी गाड़ी पर बैठे। बंगाल नागपूर रेलवेके ट्रैफिक मैनेजर और उनके सहकारी इसी पर सवार थे मिस्टर क्लारक ट्रैफिक मैनेजरने अपनी गाड़ीपर लालाजीके भोजनका प्रबन्ध किया और बड़े प्रेमका बर्त्ताव किया। दूसरे दिन १७ नवम्बरको विलासपूर पहुंचे। यहांसे गाड़ी कटनी शाखाको होली, भोजन आदिका यद्यपि ट्रै० मैनेजरने बड़ी प्रीतिसे प्रबन्ध किया था, पर दिन भर तय्यार टीनके डब्बोंमें बन्द भोज्य पर ही रहना पड़ा। दूसरे दिन बीना होकर

झांसी पहुंचे और झांसीसे दिल्ली और दिल्लीसे पञ्जाब सदरन रेलवेके द्वारा भटिण्डा होते हुए लाहौर पहुंचे ।

मार्गमें ट्रेनका नाम भी कुछका कुछ बतलाया जाता, और स्टेशन भारतवासियोंसे खाली करा लिया जाता था । ब्रह्मासे लाहौर पहुंचने तक ७ दिन लगे पर सरदारजी व लालाजीको कभी पास बैठने नहीं दिया गया, दोनों अलग अलग रखे जाते थे । गाड़ियोंकी खिड़की, झरोखे बन्द कर दिये जाते थे, कभी कभी भेदको न खुलने देनेके लिये बच्चोंकेसे ऐसे छोटे छोटे प्रयत्न होते कि अकारण ही हँसी आ जाती । मार्गमें १३ नवम्बरके साप्ताहिक संस्करण 'टाइम्स' और फ्राई मेगजीनके सिवा और कोई संवादपत्र पढ़नेके लिये लालाजीको न मिला । १८ नवम्बरको पश्चिमी मियांमीरमें रेल प्रातः साढ़े पांच बजे पहुंची, लालाजी व सरदारजीको सुपरि० सेन्ट्रल जेल लाहौर एक कमरेमें ले गये और पहिले तो एक वारण्ट पढ़कर सुनाया कि उन्हें मांडले जेलसे मियांमीरकी जेलको बदला गया है और फिर बन्धमोचनकी आज्ञा सुनाई ।

एक फिटन आरोहनको एक टम टम बोझ भारके लिये लालाजीको मिली, जिसपर चीज वस्तु रखवादी गई। सुपरि० पुलिस एक कार्टपर आगे आगे हो लिये और कोठीपर तक लालाजीको पहुंचा गये। इस भांति ६ मास नव दिनके पीछे लालाजी फिर घर पहुंचे।

लालाजी कहते हैं कि घर आते समय मार्गमें जिस उदारतासे खानपानादिका प्रबन्ध किया गया उसके मांडले जेलके सुपरि०के कार्पण्य वा मितव्ययका सारा बदला निकल गया। पुनः आप कहते हैं कि-"मुझे आशा है कि सरकार खर्चके हिसाबमें भोजन छाजनका व्यय अधिक परिमाणमें देखकर मेरे खाने पीनेके व्ययका अनुमान न करेगी क्योंकि अनेक ऐसी चीजें थीं कि जिन्हें मैंने छुआ तक नहीं।" पुनः आप दुःखसे कहते हैं कि "निस्सन्देह किसी प्रजातन्त्र देशमें प्रजाकी गाढ़ी कमाईका धन इस तरह एकत्र करके इस निर्दयता और असावधानीसे व्यय नहीं हो सकता जैसा कि जहाज और स्पेशल ट्रेनमें और अनावश्यक भेद-रक्षा व सावधानीमें पानीकी भांति फेंका गया। सारी कार्य्यवाही खेल तमाशाकी सी थी, एक अजनबी शासनकी शासन-प्रणाली जिसका प्रजाके साथ सम्मेल न हो इससे पूरी प्रकाशित होती थी।"

निर्वासन कहानीकी परिसमाप्ति पर हम उस पत्रका भी भावान्तर देना उचित समझते हैं जिसे लालाजीने गिरफ्तार होनेके दो घण्टे पहिले अपने प्रतिष्ठित मित्रोंको भी कष्ट होनेकी परवाह न करके लिख लिया था तब भोजन किया था।

लालाजीका पत्र पञ्जाबी (लाहौर) के नाम

'पञ्जाबमें अशान्तिका कारण'

केचित लोगोंकी भावना है कि पञ्जाबकी स्थिति बहुत जर्जर है, जो भय राज-पदाधिकारियोंके परिकरमें पाया जाता है और जिसका परिणाम रावलपिण्डीके पांच वकीलोंका बन्धन हुआ है, निस्सन्देह इस भावकी पुष्टि करता है; तथापि मेरी समझमें यह भय गुप्त पुलिसने अपनी कारीगरीसे पैदा कर दिया है और गवर्नमेण्टको अपने कर्म्मचारियोंके हाथकी कठपुतली बनकर नाचना पड़ा है। यह कहना मूर्खता है कि अमुक व्यक्तिने यह दशा रचकर खड़ीकी है, यह प्रकाश करना अयुक्त होगा कि इस प्रान्तमें किसी एक वा दो चारकी इतनी पहुंच और सामर्थ्य है कि वह ऐसी स्थिति पैदा कर सकते हों।

सम्भव है कि इस प्रकारके सामर्थ्यके स्वीकार करनेवालोंकी मिथ्या आत्मश्लाघा या अभिमान सिद्ध हो और यह एक भांति उनकी प्रशंसाका भी कारण हो किन्तु समस्त इतिवृत्तोंको समक्ष रखकर जो विचार-पूर्वक समीक्षण किया जाय तो यह भाव कुछ भी गुरुत्व नहीं रखता। यह तो सन्देहरहित बात है कि अशान्ति है और सो भी थोड़ी नहीं बहुत है। परन्तु इस अशान्तिके उत्पादक स्वयं एङ्गलोइण्डियन हैं और इसके कारण अधोलिखित बतलाये जाते हैं:—

(क) वह चिट्ठी पत्री और निबन्ध जो गत वर्षके जुलाई व अगस्त मासमें 'सिविल एण्ड मिलीटेरी' में 'वर्त्तमान समयके रूपक' शीर्षकान्तरगत प्रकाशित हुए।

(ख) उपनिवेश बिल (अनुशासन पाण्डुलिपि)।

(ग) बारी अन्तर्वेदकी नहरपर सिंचाईमें करकी वृद्धि।

(घ) रावलपिण्डीमें भूमि करकी असाधारण वृद्धि।

(ङ) प्लेगके कारण भयानक मृत्यु संख्या, तज्जन्य पीड़ित मन प्रजाका रोस और मनुष्य संख्या कमीके कारण मजूरीका महङ्गी होना।

यद्यपि प्लेग ईश्वरीय कोपसे हुआ किन्तु अन्य कारणोंके उत्तर दाता ऐंगलोइण्डियन हैं इनमें सिविल-मिलीटेरीके प्रबन्ध और पञ्जाबीपर मुकद्दमा चलाना व (गोरे) सिविलमिलीटेरीके विरुद्ध मुकद्दमा चलानेसे राजका इनकार करना यह दो बातें अन्य बातोंके साथ मिलकर और भी प्रजाके मनको विचलित करनेमें प्रधान कारण हुईं। रावलपिण्डीके जिलेमें लगानकी असाधारण वृद्धिने वृहद्‌भाग इस अशान्तिके उत्पादनमें लिया। इसके कारण जो विप्लव जीवनयात्रामें धीरे धीरे हुआ है उसने राजकर्म्मचारियोंको निम्न श्रेणीके लोगोंके हृदयोंपर बड़ा भारी उभार उत्पन्न कर दिया है और स्वभावतः वह हड़तालें जो प्रादुर्भूत हुईं कुछ वर्ष पूर्व उनका प्रादुर्भाव असम्भव था। इस दशामें क्या राज्य शुद्ध हृदयसे धर्म्मपूर्वक अपने पदाधिकारियोंको इस अदूरदर्शिता और चातुर्य्य विहीन कार्य्यवाहीके लिये जो कि उनसे ही प्रसव हुई दायी ठहराये विना छोड़ सकती है? जब इन्होंने ऐसे अनुशासनों (कानूनों) के सम्बन्धमें अपनी दुराग्रह न छोड़ी, जिनसे कि जनपद अप्रसन्न था और फिर उन्हींको सार्वजनिक प्रजामतके विरुद्ध पास करडाला

अर्थात् पक्का अनुशासन बना लिया और यह न सोचा कि राजकर्म्मचारियोंकी भी उसी अंश-सम्बन्धनुसार वेतन वृद्धि होनी चाहिये जिस अनुसार कि साधारण मजूरोंकी मजूरी बढ़ गई है। यदि इस बातका समय पर ही ध्यान हो जाता तो सारी अशान्ति दूर हो-जाती।

क्या आन्दोलनकारियोंको इसकारण दोषी ठहराया जाता है कि उन्होंने राजकी भूलें प्रकट कीं और जनपदके दुखमें सम्मिलित होगये। यदि यह नहीं, तो उन्होंने और अपराध ही क्या किया? वह अन्य लोगोंके दुख विदूरित करनेके लिये बद्ध-कमर होगये और आन्दोलन आरम्भ किया। इसीसे जनपदकी, इन आन्दोलन करनेवालोंके प्रति, सहानुभूति होगई। गवर्नमेंगट इन्हें यह दोष लगाती रही है कि यह अलग रहते हैं सर्वसाधारणसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं अतः इनका कोई अधिकार नहीं है कि यह जनपदके नामपर कुछ भी बात प्रकाश करें। आन्दोलन करनेवालोंको यह अवसर मिला कि इस लाञ्छनको दूर करें। क्या कोई कह सकता है कि इन लोगोंने इस अवसरके प्रयोग करनेमें भूलकी। क्या इन्हें यह उचित

था कि यह जनपद्से पृथक् रहते और उनके भावोंको ग्रहण करके प्रकाश करनेसे इनकार कर देते ? यदि वह ऐसा करते तो यह उनकी उस शिक्षाके प्रतिकूल होता जो उन्होंने पाई थी और साथ ही अपने भाइयोंके वञ्चक ठहरते । तब फिर इनपर यह दोष क्यों लगाया जाता है कि उन्होंने जनपद्की सहायता की । एक वर्ष पूर्व जनपद् उनके अभिप्रायको न समझ सकते थे, अतः वह उनके साथ होकर उनके स्वराज्यकी पुकारमें सम्मिलत भी न हो सकते थे । जनपद्को पूरा विश्वास था कि राजके उच्चपदोंपर अधिक भारत-वासियोंका नियत होना उन्हें कोई सीधा व वस्तुतः लाभ न पहुंचा सकेगा । उनका भाव था कि राजके पदाधिकारी चाहे कोई लाला हों, मिस्टर हों या मौलवी हों कुछ भी अन्तर उनकी स्थितिमें न पड़ेगा ।

परन्तु उपस्थित काननने उनके मनोंको बदल दिया, उन्हें ज्ञात होगया कि जो सेवा उन्होंने भूत-कालमें सरकारकी की है उनका फल कुछ भी न निकला और इस बातका इसके अतिरिक्त और कुछ परिणाम न हो सकता था कि उनके दिलमें यह विचार दृढ़ होजावे कि सरकार उनके साथ अच्छा बर्ताव

नहीं कर रही। जो कानून सरकार अपनी असीम-शक्तिके जोशमें पृथक् उपजातियोंके लिये बनाती रही है उसका एक एक करके सब उपजातियोंपर प्रभाव पड़ा, यहांतक कि जनपद्का कोई भाग ऐसा न रहा जो ईमानदारीके साथ किसी प्रकारसे अपनी उत्तेजना सरकारके अनुकूल दिखा सकता। हमें ज्ञात है कि एक ऐसा दल है जो सरकारके गलेका हार होरहा है। यह सरकारके ठेकेदार हैं, अर्थात् सूचना एकत्र करके देनेवाले लोग और उपाधियोंके पीछे फिरनेवाले भद्र। इस समष्टिके अगुवालोग सदा सरकारके लिये विशेष प्रेम उत्फुल्लता प्रकाश करते हैं क्योंकि इस प्रकारके कामोंसे उनका बड़ाभारी अर्थ सिद्ध होता है किन्तु यह (उपाधि लोलुप समयसेवी राजभक्त) लोग भी धर्म्मसे छातीपर हाथ धर कर नहीं कह सकते हैं कि उन्होंने सिंधाई और उपनिवेसोंके पाण्डुलिपियोंकी बाबत् जो मन्तव्य ग्रहण हुए उसमें योग नहीं दिया। अन्तर इतना ही था कि यह टट्टीकी आड़में रहकर भद्र बने रहे और उन्होंने (सत्यवादी नवयुवकोंने) वीरतासे खुल्लमखुल्ला काम किया। इन नये कानूनोंने, जो जनपद् प्रेमपात्र होनेसे बहुत दूर थे, उन केचित्

नवयुवकोंको अवसर दे दिया और उन्होंने इस अवसरको मन भरकर काममें लिया। इनके कथन निर्भय थे; यह सब प्रकारकी आपत्तियोंको, जो इन्हें इनके विचारोंके कारण सहन करनी पड़ें, सहनेको तय्यार थे, अतः इनके कथनोंका प्रभाव सीधा और वस्तुतः जनपदके हृदयपर पड़ा। इसीका फल था कि सहस्रों मनुष्य उनके सम्मिलनोंमें एकत्र होते हैं।

लोगोंकी यह भावना कि इन नवयुवकोंकी पीठ पर दायित्वविशिष्ट लोग सहायक हैं, मूर्खता है, इस बातका कारण स्पष्ट है, कोई भी विचारशील या दायित्ववाला देही यह नहीं विचार कर सकता कि किसी प्रकारसे भी देश किसी राजनैतिक विप्लवके लिये तय्यार है। पञ्जाबमें (समस्त भारतमें) सदैव इस आवश्यताको सामने लाया जाता रहा है कि कामको नियमानुकूल करना चाहिये, कोई प्रबन्ध, इस दशामें जो पिछले नव महीनेमें इस प्रान्तगत रही है, प्रचरित नहीं हो सकता न पूरा ही पड़ सकता है। आर्गनीजेशनों अर्थात् प्रबन्धोंके पौदेको जड़ पकड़नेके पूर्व स्थिर धरा और शान्त वायुकी आवश्यकता होती है तब फल देता है। इन लोगोंने यदि लेखों और कथनों

द्वारा इन नवयुवकों और उत्तेजित वक्ताओं व राज-नियम-मर्मज्ञोंको बुरा भला नहीं कहा किन्तु इसपर भी उनसे जहांतक बन पड़ा इस बातकी चेष्टा की कि यह मध्यावस्थाकी ओर आजावें जिससे यह अधिक दृढ़ और स्थायी कार्य्यसम्पादनके लिये समर्थ हों और तदनुसार ही दृढ़ व स्थायी फल प्राप्ति भी हो सके। यह एक दुर्भाग्यकी बात है कि इन्हें इनकी इच्छानुसार कृतकार्य्यता न हुई तथापि उनकी अकृतकार्य्यता अर्थविहीन नहीं।

जब कि ऐसे वावदूक और अन्य लोग, जिन्हें दो तीन मास पूर्व कोई जानता भी न था, बिना किसी शक्ति और सहिष्णुताके दायी अग्रगण्योंकी इस अनुमतिसे मुंह मोड़ लेते थे और उनके आधीन रहकर उनकी सम्मत्यानुसार चलनेको तय्यार न थे प्रत्युत उनकी शिक्षाओंको सुनना भी नहीं चाहते थे, उल्टा उनके नैतिक साहसपर दोषारोप करते थे और कभी कभी उन्हें डरपोक कहकर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते हुए सारे कामोंमें मनमाना व्यवहार करते थे; तो ज्ञात होता था कि उन्हें जनपदकी सहानुभूतिपर भरोसा है, इसीलिये यह उनकी परवाह नहीं करते

जो इन्हें पथप्रदर्शन करना चाहते हैं और अपने वशमें रखनेकी चेष्टा करते हैं। इन नवयुवक वक्ताओं और आन्दोलन कर्त्ताओंके पास कुछ था जिससे जनपद प्रसन्न होता था, इनका साहस बढ़ता रहता था और इनके काम सानुकूल दृष्टिसे देखे जाते थे।

यह कल्पना भी दुर्बुद्धिकी बात होगी कि इनके श्रोतागणमें केवल लड़के होते थे। क्या कोई समझदार कह सकता है कि जो सभाएं लायलपूर, मुलतान, बटाला, अमृतसर व दिल्लीमें हुईं उनमें केवल विद्यार्थी ही सम्मिलित होते थे। जब कि कालेज और स्कूल प्लेगके कारण बन्द होगये थे तब भारत माताकी बैठकोंमें कौन लोग सम्मिलित होते थे? लाहौर रावलपिण्डी और दिल्लीमें कुल लड़कोंका अंश सम्बन्ध क्या है, इस अंश सम्बन्धको उस संख्यासे मिलाकर देखें जो सरदार अजीतसिंह व सय्यद हैदररजाके लेक्चरोंमें श्रोताओंकी होती थी। यह बात निर्विवाद सत्य है कि यदि धर्मानुकूल होकर देखें तो इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकते कि जिस बातको लेकर यह दोनों महाशय उठे हैं वह सर्वसाधारणको प्रिय है उनके मनके अनुकूल हैं। इनकी वक्तृताओंको सुनकर

सहस्रों लोग प्रतिष्ठा पूर्वक तत्काल ही अपनी उत्तेजनाका प्रकाशन करते हैं। पुनश्च हजारों लोग इन्हीं वक्तृताओंको जब वह देशी भाषाके संवादपत्रोंमें निकलती हैं प्रेमसे पढ़ते हैं।

एङ्गलो इण्डियन संवादपत्रोंमें एक दायित्वविहीन-जन जो चाहे लिख दे, किन्तु दायित्व सम्पन्न राज-पदाधिकारीगण इस बातकी ओरसे अपनी आंखें नहीं बन्द कर सकते कि 'सरदार अजीतसिंह और सय्यद हैदररजा जनपदके मनका वृहदांश प्रकाश करते हैं।' फिर उनकी बातको तुच्छ मानकर वे परवाही करना या क्षुद्र दृष्टिसे देखना पागलपनका काम है—तथापि मेरा विश्वास है कि दशा अभी ऐसी नहीं हुई जिससे इस भयको जो एङ्गलो इण्डियन परिकरमें, इस समय छा रहा है ठीक माना जा सके।

पञ्जाबकी अशान्तिने अभी वह रूप धारण नहीं किया कि लोग सीमातीत कामोंपर उतर पड़ें। जो जहां तहां सीमातीत कार्य्यवाहियां प्रकाशमें आई हैं वह या तो गुप्तचारों (गुप्त पुलिस विभाग) के कामोंको प्रकाशित करती हैं या गुण्डे लोगोंके कुकर्मको अथवा कतिपय ओछे बालकोंके कामको प्रकट करती हैं या इन सबकी सम्मिलित करतूत को।

राजका कर्त्तव्य

जो कुछ भी हो, लेकिन यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि जो इस अशान्तिको विदूरित करनेकी चेष्टा न की गई और क्रुद्ध लोगोंके मनोंको और चोट खाये हुए भानों व भावोंको शान्त न किया जायगा तो यह अनिष्ट अधिकोऽधिक बढ़ता जायगा। सम्भव है कि कठोर व्यवहार लोगोंको कुछ समयके लिये हतोत्साह करदे लेकिन यह निस्सन्देह बात है कि कठोरता कृतकार्य्य न होगी। जबतक प्रजाके मनमें यह विश्वास स्थिर रहेगा कि उसके और राजके स्वार्थोंमें प्रतिद्वन्दता है, उनके साहसको कुचलना हानिकर होगा; यह पारस्परिक मुठभेड़ रहेगी तो जनपदकी उत्तेजना भड़कती रहेगी चाहे कितना ही प्रबन्ध उनके दबाने व मिटानेका क्यों न किया जाय। यह बात अभी नवजात है।

गवर्नमेण्टके प्रति लालाजीकी रत्नशिक्षा और सच्ची राजभक्ति।

पचास वर्षके सुख-शान्ति-सम्पन्न शासनके अनन्तर जब कि लोग विचलित समाजके कष्टोंको सर्वथा भूल गये हैं और कुछ

लोलुपतासे जीवन बिता रहे हैं, रावलपिण्डीकी पकड़ धकड़ोंका हाल सुनकर स्तम्भित रह गये हैं । सम्भव है कि कुछ कालके लिये यह साहस छोड़ बैठें और पञ्जाबमें राजनैतिक आन्दोलन दब जावे । लेकिन ज्योंही लोग कुछ सुध संभालेंगे और यह सोचना आरम्भ करेंगे कि राष्ट्रीय स्वत्वोंकी मुठभेड़में व्यक्तिक लाभ कितने तुच्छ हैं, इनकी सहानुभूति उन लोगोंके प्रति, जिन्होंने सबसे पहिले कष्ट उठाये हैं, फिरकर, मूल मन्तव्यके सामने मत्था टेकेगी, भय जाता रहेगा और बचावके बदले बलि होनेकी इच्छा उत्पन्न हो जायगी। यदि यह पकड़ धकड़ सार्वजनिक होगई जैसा कि पदाधिकारियोंकी वर्त्तमान भयभीत दशासे प्रकट होता है, तो यह सारा मार्ग सरलतासे कट जायगा । मैं यह नहीं मान सकता कि यह गिरफ्तारियां राष्ट्रीय आन्दोलनको रोक देंगी । राजकी कठोरता स्वाभाविक है, जो प्रभाव इन कार्य्यवाहियोंका जनपदपर पड़ेगा उससे ज्ञात होगा कि देशमें राजनैतिक मूलजीवन कितना है और उसपर कितना भरोसा हो सकता है। इससे उन लोगोंको जो इस निमित्त अपना जीवन प्रदान करना चाहते हैं, अभीष्ट जीवनमें प्रवेश करनेका नया अवसर हाथ लग जायगा । राष्ट्रीय विकाशका हारों और अकृत-कार्य्य-कर्त्ताओंके साथ सम्बन्धित होना अनिवार्य्य है अतः किसीको हताश होनेका कोई कारण नहीं ।

प्रजाके प्रति यथार्थ चतुराई और परमात्माका कृतज्ञ रहना सिखलाता है कि हर चीजको जो हमारे सामने आये उसे ग्रहण कर लें और उनसे ठीक परिणाम निकालें। उन्हींके अनुसार अपने मार्गों व साधनोंका प्रबन्ध करें और फिर दृढ़ता और सच्चे विश्वाससे अपना चलना प्रचलित रखें बन्द न करें।

लाजपतराय—९ मई १९०७

तृतीय भाग ।

हालकी कुछ बातें ।

१८ नवम्बरको लालाजीको छुटकारा मिला और १९ नवम्बरको यह बात सारे देशमें व्याप्त होगई । आपके माण्डलेसे लौट आनेपर देशमें सर्वत्र आनन्द मनाया गया । बहुत जगह सभाएं हुईं और आपके दीर्घायु होनेकी परमात्मासे प्रार्थना की गई अनेक स्थानोंमें दीन दुखियोंको भोजन वस्त्र आदि दान हुए ।

दिसम्बरमें आप वैश्य कान्फ्रेंस मेरठमें सम्मिलित हुए । आप वैश्य अनाथालय मेरठके लाइफ मेम्बर हैं। लेखक स्वयम् इन संस्थाओंसे अनेक कालसे सम्बन्ध रखता है और व्यक्ति गत प्रस्तुत था अतः कह सकता है कि मेरठमें आपके लेनेके लिये स्टेशनपर जितनी भीड़ हुई थी उतनी पहिले कभी किसी भी महानुभावके लिये नहीं हुई ।

वैश्य कान्फ्रेंसके सञ्चालक प्रायः सब राज भक्त हैं और आधेसे अधिक राजके उच्च पदाधिकारी लोग थे और अब भी राजकर्मचारियोंका तत्व इस सुधारक

समाजमें विशेष है, इससे प्रत्यक्ष है कि राजा व प्रजा दोनोंके ही लोग लालाजीके साथ जो वर्त्ताव हुआ था उसे बुरा; न्याय असङ्गत और लालाजीको सर्वथा निर्दोष मानते थे व मानते हैं।

साधारण प्रजाकी आग्रहपर आपने कान्फ्रेंस पिण्डालके अतिरिक्त भी दो तीन व्याख्यान दिये व्याख्यान आपके सदा की ही भांति युक्ति युक्त, बुद्ध सङ्गत, न्याय-सीमाके भीतर, उत्साह वर्द्धक और समीचीन थे।

आपने कलकत्ताके ऐंग्लोइण्डियन संवादपत्र इंग्लिशमैनपर और लण्डनके प्रसिद्ध महाद्वन्दकारी टाइम्स पर इस कारण अभियोग चलाया कि इन्होंने नीचताके साथ लालाजीपर यह मिथ्या दोषारोप किया कि आपने सरकारी सेनाके लोगोंको राजके विरुद्ध भड़काना चाहा था। यद्यपि अनेक लोगोंकी सम्मति न थी कि आप नालिश करें क्योंकि ऐसे नीचों और मिथ्यावादी धर्म्मच्युतोंके साथ समतामें आना उत्तम नहीं, दूसरे कमीनोंके मुंह भद्रोंको लगना शिष्टता नहीं तीसरे यह किसी न किसी समष्टिके मुख समझे जाते हैं जब उस सारी ही समष्टिने इनकी नीचताका घोर

खण्डन करनेकी उदारता नहीं दिखलाई तो उसी समष्टिके समक्ष न्यायकी आशा करके जाना एक भारी भूल थी परन्तु हो क्या लालाजी किसी दूसरे ही विचारके सज्जन हैं आपने नालिश की ही।

न्यायालयोंने अपनी गमित महिमा की रक्षाके निमित्त लालाजीको मात्र १५००) की डिगरी इंग्लिशमैन पर व ५० पौण्ड अर्थात् ७५०)की 'साधु' टाइम्सपर दी यह डिकरी लालाजीको बहुत सा धन व्यय करनेपर मिलीं तथापि इस धनको आपने सर्वहितकारी कामोंके लिये समर्पण कर दिया।

हम अनेक अन्य लोगोंकी भांति यहां यह कह सकते हैं कि यदि लालाजी उसी धनको जो उन्होंने उक्त डिकरियोंके सम्प्राप्तिमें लगाया इस २२५०) के बदले दे देते तो देशका हित अधिक सधता और आपकी महिमामें जो निर्बलताका दोष कतिपय लोग लगाते हैं न लगा सकते। यह बात कि संसार कैसे जानता कि उक्त पत्रोंने मिथ्याबाद किया सीधे शब्दोंमें तय हो सकती है कि पार्लीमेण्टके प्रश्नोंसे विदेशियोंको आपकी निर्दोषिताका निश्चय हो चुका था। और स्वदेशियोंको तो आपके अन्तःकरणकी शुद्धिका पूरा विश्वास था ही व

है ही। लेकिन जो कुछ हुआ वह स्यात कुछ राजके व लालाजीके मध्य प्रेम स्थापनका कारण हुआ, सन्दिग्ध है।

इसके अनन्तर आपने लगातार अनाथों, दीनों व अकालपीड़ितोंकी सहायतामें पूर्ववत् अपना काम किया और अब १९१२ में भी गुजरातके अकालपीड़ितोंकी सहायतामें दत्तचित्त होरहे हैं यह बात जगत् प्रसिद्ध है।

आपने पञ्जाबमें सन् १९११ के अन्तिम भागमें ही चेष्टा करके शिक्षालीग स्थापित की। इसके द्वारा अछूतजातियों, निर्धनों और सर्वसाधारणमें भी प्राथमिक शिक्षाका प्रसार अच्छीप्रकार होना प्रकट जान अनेक स्कूल, पाठशाला आपने स्थापित की हैं। इनकी संख्या और कार्य्यकी सीमाका विस्तार और सङ्गठनकी दृढ़ताका उपाय आप बड़ी सावधानी, चातुर्य्य और लगनके साथ बराबर कर रहे हैं जिसके लिये पञ्जाबभूमि आपकी कृतज्ञ रहेगी।

मांडलेसे लौटनेके पीछे आपने कांग्रेस नामी राजनैतिक सभाका फेर पीछा नहीं किया और एक भांति इसका परित्याग तो आप उसीसमय कर चुके थे जब

इनको अनेशनल कांग्रेसकी ओरसे क्रीड (शर्तनामा जिसे हम दो चारोंकी गुलामीका पट्टा कह सकते हैं) दस्तखतके लिये दिया गया किन्तु आप दस्तखत न किया जेबमें रख कुछ बातचीतके बाद वहांसे चल दिये।

पाठकोंको याद होगा कि लालाजीने एक पत्रमें यह कहा है कि गतबार प्रयागमें पंडित मदनमोहन मालवीयको मैंने रुष्ट कर लिया। यह रुष्टता कोई निजू बातकी न थी किन्तु इसका कारण राजनैतिक वैमत्य ही था। इससमयसे ही कांग्रेसका नाता आपने तोड़ दिया था और पहिले भी आप कांग्रेसके भक्त न थे किन्तु किसी न किसी भावको लेकर यह कांग्रेसी फन्देमें फँस गये थे परन्तु यह स्थिति परमात्माको धन्य है कि शीघ्र मिट गई ; साथ ही आप राष्ट्रीय दलके साथसे भी कुछ हटे मन ही रहे। इसके अनेक कारण हैं जिन्हें आगेके पृष्ठोंके पढ़नेसे पाठक स्वयम् अनुभव कर लेंगे।

१९१२ के आरम्भमें श्रीमानूजी स्वेच्छासे या अन्य देशवासियोंकी आग्रहसे (इसमें मतभेद है) म्यूनिसिपेलिटीमें कमिश्नरीके अभिलाषी हुए और यह प्रत्यक्ष है कि आपको अन्य प्रतिद्वन्द्वियोंपर

विजय मिलनी थी और मिली। इसमें सन्देह नहीं कि किसी भी पब्लिक काममें क्यों न हो यदि सारे राष्ट्रका मत किसी दायित्व विशिष्ट पदके लिये लिया जाय तो अब भी समस्त प्रतिद्वन्दियोंको आपके सामने हारना पड़ेगा, सार यह कि आप आशातीत मत बाहुल्यसे म्यूनिसिपेल कमिश्नर चुने गये। जिस दिन आप म्यूनिसिपेल कमिश्नर चुने गये उस दिन सारे लाहौर नगरमें आनन्द छा गया सब लोग यह कहते सुने जाते थे कि 'लाला लाजपतरायकी जय'—'देशका गौरव रह गया, प्रजाकी बात रह गई।'

इसमें भी सन्देह नहीं कि म्यूनिसिपेलिटीमें आपके पदार्पणसे लाहौर नगरको बड़े बड़े लाभ इस कुछ ही मासमें सिद्ध हुए हैं और जहाँ तक वर्त्तमान राज गठनमें प्रजा हित म्यूनिसिपेल कमिश्नर साधन कर सकता है साबित हुआ व होगा। परन्तु इस बातमें कि यह काम लालाजीने अपनी स्थिति और राष्ट्रदल नेताका नाता देखते उचित किया या नहीं मतभेद रखती है। बहुतोंकी सम्मति इस बातके अनुकूल है और बहुतोंकी प्रतिकूल। हमारी सम्मतिमें जब समस्त लाहौरकी प्रजा आपको चुननेके अनुकूल

हुई और यह कृत्य आपका बुरा नहीं समझती तो सार्व जनिक सम्मतिके आगे कतिपय लोगोंका विरोध करना चाहे कितना भी सिद्धान्तानुकूल विरोध क्यों न हो अनुचित है।

हम इस पर विशेष विस्तार न करके अगले पृष्ठोंमें आपके भावोंका उल्लेख करेंगे, क्योंकि जीवन-चरित्रके प्राण चरित्र नायकके भाव होते हैं। कृत्यों-के विकाश, प्रकाश, और निकासमें भाव ही कारण होते हैं अतः हमने इस ग्रन्थका आधा भाग लालाजीके भावोंके प्रकाशनके लिये समर्पण करना निश्चित किया है।

चौथा भाग।

परिशिष्ट—

(१) सरसय्यद्के नाम लालाजीके खुले पत्रोंमेंसे कतिपय उल्लेख।

महोदय,

आपका पत्र सोशल रिफारमर मेरे पिताजी मुझे पढ़कर बहुधा सुनाते थे। यह आपको १९ वीं शताब्दिका नबी मानते थे। आपके अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजटके लेख, आपकी कौंसिलकी वक्तृताएं और अन्य पबलिक सम्मिलनोंके व्याख्यान मैं लगातार मनन करता रहा हूं।

एक समय था कि आप * जान स्टुवार्ट मिलकी लिवर्टी नामक पुस्तकको समर्थन करते थे। अब आप

* जान स्टू० मिल एक महान राजनीतिज्ञ अंग्रेज हुआ है इसकी पुस्तकें राज्य सिद्धान्त व स्वतन्त्रता 'लिबरटी' व 'स्पूरीज आव स्टेट' प्रसिद्ध और पढ़ने योग्य हैं।

नेशनल कांगरेस, 'राष्ट्रीय महादल' की बाबत् जो लिखते हैं उसे पढ़कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। समयने पलटा खाया, चापलूसी और अधिकारियोंके दम झांसेने अच्छे दूर दर्शीकी भी आंखें अन्धी कर दीं और महान अग्रगण्य सत्यान्वेषीकी आत्मा भी भीरुतासे अधःपतित होगई। अनेक महान् हृदयोंकी जाज्वल्यमान सत्याग्नि भी ऐहिक शासकोंकी अनुग्रहने बुझा दी, शोक है कि बुढ़ाईमें थोड़ेसे जीवनके लिये लोग अपने लगाये पौदोंको जड़से उखाड़ फेंकनेकी चेष्टा करने लगें।

आपकी १८५८ की लिखी पुस्तक, 'भारतीय उपद्रवके कारण' जिसका अंग्रेजी भाषान्तर १८७३में हुआ देखनेसे पाया जाता है कि इसमें आपने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि सन् ५७ का विप्लव न धार्मिक समर ही था और न कोई पूर्व संचिन्तत कपट-प्रबन्ध ही था। आप कहते हैं कि बहुत लोग मेरी समान विश्वास रखते हैं कि यह राजकी कुशल और दृढ़ताके लिये बहुत ही सहायक व आवश्यक है कि प्रजाकी कौंसिलमें प्रजा मतको स्थान हो। यह प्रजाके ही मुखसे राजको ज्ञात हो सकता है कि उसके प्रयत्न

प्रजा प्रीतिसे ग्रहण करेगी या नहीं। राजकी रक्षा इस ज्ञानमें है कि शासितके स्वाभाविक बातें क्या हैं और उसके स्वत्व व अधिकार क्या हैं।

व्यवस्थापक सभामें प्रजा प्रतिनिधि न होनेके कारण अनेक दोष हुए हैं, प्रजा राजके नियमों, अनुशासनों व अन्यन्याय धाराओंके मन्तव्योंको नहीं जान सकती कि क्या हैं जो कि उसे जानना उचित था। जो भारती लोग कौंसिलमें होते तो वह प्रजाको सब बात बतलाते समझाते और यह दोष न उत्पन्न होते। बड़ा दोष यह होता है कि प्रजा राजके विचारों व भावोंको कुछका कुछ समझ लेती है और अनेक बातोंको उसने उलटा समझा है।

प्रत्यक्ष है कि आपकी सम्मतिमें राज काजमें प्रजाका हाथ सर्वथा न होना ही इस असन्तोषका मूल कारण है। आपने यहां तक कहा है कि भारतमें भी आपके देशकी प्रजामेंसे चुने २ सदस्योंकी सभा संगठित हो जैसी कि बृटिश पार्लीमेण्ट है। जिस समय आपने यह स्वत्व मांगा था उस समय यह अबसे कहीं अधिक समयसे पहिले यह याञ्चना थी उतनी अब कांग्रेसकी मांगे नहीं यद्यपि १८५८ से अब शिक्षा आदिके लाभ कहीं अधिक

हैं, और एक अंश मात्र प्रजा प्रतिनिधित्वका व्यवस्थापक सभामें कांग्रेस चाहती है।

आपने कहा है कि "भारतमें स्थावर सम्पत्ति एक राज्यके समान होती है। इस सब सम्पत्ति पर एक प्रधान पुरुष चुननेकी सदासे प्रथा रही है। इसके द्वारा विवाद्ग्रस्त विषय उपस्थित किये जाते हैं और प्रत्येक भागीदार अपनी जमीदारीके अंश सम्बन्धके अनुसार सम्बन्धित विषय पर अपना अभीष्ट कह सकता है। यद्यपि आपका यह कथन ठीक नहीं है कि वह अपने भागके अंश सम्बन्धानुसार ही कह सकता है तथापि यों ही सही। पुनः आप ही फरमाते हैं "ग्रामोंके किसान और चौधरी ऐसे अवसरोंपर आते हैं व जो वक्तव्य होता है कहते हैं"।

पत्र सं० २

महोदय,

पहिला पत्र लिखे दो सप्ताह होते हैं, आपके प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा की; ज्ञात पड़ता है कि आप उत्तर देनेका इरादा नहीं रखते। मैं सिद्ध करूंगा कि एक दिन आप भी उन्हीं सिद्धान्तोंपर विश्वास करते थे जिनपर आज कांग्रेसके प्रस्ताव आधार रखते हैं।

इस पत्रसे आपको और मार्ग न मिलेगा सिवा इसके कि या तो आप अपनी वैमत्ताको स्वीकार करें या राजनैतिक मैदानसे दुम दबा जायँ।

आपने 'भारतके उपद्रवके कारण' नाम्नी पुस्तकमें कहा है कि "राजको जनपद प्रिय होनेके लिये प्रजाके प्रेमभाव व उसकी मैत्री प्राप्त करनी आवश्यक है।" आप यह भी कहते हैं कि 'मुझे सत्य बाध्य करता है कि मैं कहूं कि सरकारने अपनी प्रजाकी मैत्री नहीं उपार्जित की जैसा कि उसका कर्त्तव्य था या उसे (सरकारको) करणीय था। सन्तति पितरोंको पीछे प्यार करती है और पितर (माता पिता) उसे पहिले प्यार करते हैं। जो छोटा बड़ेकी प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये पहिले चेष्टा करता है तो वह चापलूस, खुशामदी कहा जाता है, मित्र नहीं। अतः सरकारको पहिले प्रजाकी मैत्री प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये नकि प्रजाको राजा की। जो सरकार मेरी बात असत्य कहे, व कहे कि उसने प्रजाकी मैत्री उपार्जन करनेकी चेष्टा की परन्तु बदलेमें शत्रुता मिली, तो मैं यह कह सकता हूं कि उसने ठीक मार्गका अवलम्बन नहीं किया, यदि ऐसा होता तो प्रजा उसकी सपक्षिणी,

सहायिका व सुमित्रा होती नकि खड्गहस्त होकर सामने उठती। मित्रता एक भाव है जो हृदयसे उत्पन्न होता है और शिक्षाओंसे नहीं।

आपको याद होगा, कि आपने अपनी वैज्ञानिक समाजखोलनेके दो मास पीछे १९ जनवरी सन् १८६४को न्यू गाजीपूर वर्तमान विक्टोरिया कालेजकी नीवका पत्थर धरते समय एक बलवती वक्तृता दी थी। इस वक्तृतामें आपने फरमाया था कि 'याद रहे, भद्र पुरुषो, कि श्रीमती महारानी विक्टोरियाने इस देशमें घोषणा की थी कि उनके चाकर व उनकी प्रजा फिरङ्गी व भारती एक ही बराबरीके आधारपर जाने माने जायँगे।' सय्यद महोदय, क्या इसपर भी आप हमारी हँसी उड़ावेंगे कि हम उक्त घोषणाको, अपना महत तांबापत्र 'मेगना कारटा' विश्वास करते हैं ?

आपने १० मई सन् १८८६ को एक व्याख्यान अलीगढ़में देशी और फिरङ्गी लोगोंके प्रभावशाली सम्मिलनमें दिया था और उसमें बृटिश राजको भारतके नवाबों व राजाओंके राजसे समता दी थी और कहा था कि—"भारतके राजों व नवाबोंका शासन अन्याय और अत्याचारपर आधार रखता था। बल

ही स्वत्व था, प्रजाकी बात न सुनी जाती थी, बलिष्ट और धींग निर्बलों और दीनोंको सताते थे और अपने अनुचित स्वार्थोंके लिये उनके स्वत्वों वा अधिकारोंको अपहरण कर लेते थे और कोई उन्हें दण्ड देने वाला न था।"

आपने अपने देशवासियोंसे कहा था कि "तुम्हीं लाञ्छित होगे जो आगे आनेवाले वर्षोंमें तुम यह देखोगे कि फिरङ्गी प्रजा अपने अधिकारोंके सुख सम्भोग करती है और तुम्हारी इच्छाएं अपूर्ण रह गईं।" नहीं तो, "तुम लखनस्थ एसोसियेशनके साथ होकर कर्म्मी बनो, वह इसी निमित्त स्थापित हुआ है।"

आपने माननीय (अब स्वर्गीय) श्रीयुक्त पंडित अयोध्यानाथ महोदय प्रयागवासीकी लखनऊवाली वक्तृताकी आलोचना करते हुए कहा है कि 'अच्छा होता जो कांग्रेसके चीतकार पहिले होते तब समझते कि सरकारने उन्हें अधिकार सम्प्रदान किये और हम उन्हें भोग रहे हैं।" सय्यद महोदय मैं कहता हूं कि कांग्रेसके पूर्व भी चीतकार जीवित थे और आप ही (सरसय्यद अहमदखां) प्रधान चीतकार करनेवाले थे।

आपने यहांतक कह डाला है कि "कुछ डर नहीं करना चाहिये, जो सरकार तुम्हें असन्तोषी कहे। मुझे डर है कि राज व राजकर्म्मचारियोंके बखेड़िया व असन्तोषीकी प्रतिष्ठा प्रदान करनेका भय तुम्हें अपने देशके हित करनेके लिये आगे बढ़नेमें बाधक होता है। मेरी बातका विश्वास रखो कि नैतिक-भीरुता अपराध है, तुम्हारा यह भाव निर्मूल है, कोई भी स्वतन्त्र-विचारशील अङ्गरेज भारतमें ऐसा नहीं जो ऐसी कुभावना रखता हो। यदि उन्नत सभ्यताके ऐसे स्वस्थ चिन्ह हमारे देशवासियोंमें पाये जायँगे तो यह लोग उल्टे प्रसन्न और आशावान होंगे।'

आप यह न समझें कि मैं इन पत्रोंको भारतमें ही प्रकाशित करके सन्तुष्ट हो बैठूंगा वरन् आपकी कलवाली प्यारी समितिकी पुस्तिकाके साथ साथ इन्हें (इन पत्रोंको) भी स्वतन्त्र इङ्गलैण्डमें बांटा जायगा।

"आपने अपनी पुस्तकमें कहा है-भारतके असन्तोषका कारण यह है कि सरकार प्रजाकी दुर्भाग्य ग्रस्तावस्थासे ज्ञात नाममात्रका ही परिचय रखती है। इसका सुधार कैसे हो सकता है। शासक और शासितमें कोई सच्चा संयोजन नहीं है एक दूसरेके साथ या समीप

नहीं रहते जैसा कि मुहम्मदी विजेता अपने शासित देशोंमें करते थे। राज व उसके कर्म्मचारियोंने कभी उस मार्गका अवलम्बन नहीं किया जिससे प्रजाकी वास्तविक स्थितिका परिज्ञान होता।"

"इस संयोगकी आशा अंगरेजोंसे नहीं हो सकती क्योंकि यह सबके सब अन्तमें अपने देश जा बसते हैं और यदा कदा ही सदाके लिये कोई देशवासियोंके मध्य बस रहता है।"

मैं पूछता हूं कि महाशय क्या इस बातमें अब कुछ उन्नति हो गई है? सब तो सब सौ में एक भी रिटायर्ड (पेनशन प्राप्त) अंगरेज कर्मचारी भारतमें स्थायी रूपसे बसता है? मैं तो यही देखता हूं कि पहिलेकी ही भांति अब भी इनका भारतमें चिड़िया रैन बसेरा ही है, नहीं, प्रत्युत जिस समय आपने लिखा था उससे अब अधिकतर। क्या भारती व फिरङ्गी एक साथ या पास पास रहने लगे हैं। क्या आपकी भांति कुछ भारतवासी फिरङ्गी ढँगपर रहने लगे हैं, इसीसे आपका मतलब सिद्ध हो गया। यदि यही बात है तो आप बुरी भूल कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि देशियोंका फिरङ्गी ढँगपर रहने लगना लाभ नहीं किन्तु उलटी हानि है।

आप एक स्थलपर स्वयम् कहते हैं कि "राजके चाकर लोकमत व लोकभावसे अनभिज्ञ होते हैं क्योंकि उन्हें इनके जाननेके निमित्त हो प्रस्तुत नहीं।" (देखो जीवन चरित्र करनल ग्रेहम कृत पृ० ४९)

क्या राजा प्रजाके अन्तरभाव निवेदनपत्रोंसे जान सकता है? इसका प्रत्युत्तर मैं भी आपकी ही तरह दूंगा कि—ना। आपने कहा "यह निवेदनपत्र क्यात ही विचारे व सुने जाते थे" मैं कहता हूं कि क्यात ही विचारे व सुने जाते हैं।

तब क्या समाचारपत्रों द्वारा राज प्रजामत ठीक ठीक जान सकता है? ना, क्योंकि राजकर्मचारी इनके सदा ही कटु विरोधी रहते आये हैं व कहते हैं कि इनका मत लोकमत नहीं, वरन् निज मत है।

पबलिक सम्मिलनका भी कुछ प्रभाव नहीं, क्योंकि इनकी बाबत प्रकाश किया जाता है कि यह आन्दोलन-व्यवसायियोंका, उधमी वाचालोंका और पटान्तरसे डोर खींचनेवालोंका काम है।

तब आपकी भांति मानना पड़ता है कि उत्तम शासनके निमित्त आवश्यक है कि प्रजाका हाथ भी शासन पद्धति व प्रबन्धमें हो, उनकी बात राज काजकी सम्मतियोंमें सुनी जाय।

सय्यद् महोदय, क्या अब भी आप हमें राजविद्रोही कहेंगे ? फिर उत्तरकी प्रतीक्षा करनेके पीछे मैं लिखूंगा ।

आपके एक पुराने अनुगामीका
पुत्र

३ पत्रके मर्म्मस्थल ।

सय्यद् महोदय,

मैं याद दिलाता हूं कि यह वही भारत है कि जिसके पुत्रोंके कुशलक्षेमकी कामनासे आपने अलीगढ़में 'सि० यूनियन क्लब' की स्थापना की थी । इसमें अलीगढ़ मुहम्मदन कालेजके उत्तीर्ण छात्रोंको पब्लिक बातोंपर पब्लिक गोष्टियोंमें वादानुवाद करना सिखाया जाता था । आपने वादानुवादके वह नियम क्यों रचे जो देशमें प्रतिनिधि-शासनस्थापनाकी भविष्यतवाणी करते हों ।

लफटण्ट करनल ग्रेहमकृत जीवनचरित्र पृष्ठ ४९ देखिये आप कहते हैं—"प्रजा विभक्त हैं, उनके स्वत्वोंका सपक्षी कोई नहीं जो देखे कि उनके साथ न्याय होता है या नहीं और लोग कोठलेमें मुंह

डालकर रोते हैं।" इन शब्दोंके होते क्या अब आप कह सकते हैं कि प्रजाको उनके स्वत्वोंका संरक्षक वाञ्छित नहीं है, सरकार ही विना मांगे जांचे जो देश हितके लिये उचित समझती है करती रही है और करती रहेगी और उनको कोई पृष्ठपोषक उनके दुखोंके प्रकाशन और उनके स्वत्वोंकी प्राप्तिके लिये दरकार नहीं है।

क्या आपकी ही शिक्षानुसार जो हम देशहितके लिये आगे बढ़नेकी बात करते हैं तो राजके अभक्त हैं? यदि हम (अराजभक्त, राजविद्रोही आदि) इन्हीं उपाधियोंके योग्य हैं और इसका कारण भी यही है, तो मैं अवश्य कहूंगा कि—महोदय! इस सबके जन्मदाता आप ही हैं। आपने ही जैसा सिखाया वैसा हम अब करनेको उद्यत हुए। आपने न केवल सिखाया किन्तु अपना आदर्श दिखाकर उत्साहित किया; अब आप क्यों इन उन्नत सभ्यताके स्वस्थ चिन्होंको बुरा कहते हैं? आपने स्वयम् सिद्धान्तोंका विरोध करना कैसे आरम्भ कर दिया—उन सिद्धान्तोंको जिन्हें आपने ही फैलाया था। यों कहो कि सिद्धान्तोंको त्याग न करना किन्तु इन सिद्धान्तोंको दुर्वाद देनेवालोंसे घृणा

करनी चाहिये ; तब हम जानेंगे कि सिद्धान्तोंको न कि मनुष्योंको कैसे प्यार करना चाहिये। हम आपको इन सिद्धान्तोंके कारण प्यार करते थे क्योंकि हम समझते थे कि आप सबसे अधिक अपने देशको प्यार करते हैं, क्योंकि हम वर्त्तमान भारतका एक जनक समझते थे, जो हमने भूलकी थी तो वह भूल यथा समय बतलानी थी। किसी कविने सत्य ही कहा है कि—

ख़्वाब था जो कुछ कि देखा,
जो सुना अफसाना था। *

हा, मानवी भ्रान्ति! सर्वदा ही मानवी नेत्रोंको, तब तो तू भ्रान्तिमें डालती रहेगी। अधिक अगले पत्रमें लिखूंगा।

आपका—
आपके एक पुराने अनुगामीका
पुत्र

पत्र संख्या ४ के मर्म्मस्थल।

चौथा सम्मिलन इ० ने० कांग्रेसका इलाहाबादमें बैठनेको है अतः मैं अधिकतम लाभके कुछ वाक्य

* ख़्वाब = स्वप्न। अफसाना = कल्पित कहानी।

उद्धृत करनेकी त्वरा करता हूं शेष छोटी छोटी बातें आगेके लिये छोड़ता हूं।

जब यह पत्र आपके पास पहुंचेगा तो आप सम्भवतः विपद्-वायसरायकी वक्तृता पढ़कर मुसकराते होंगे। यह वक्तृता उन्होंने सेंट एण्ड्रु भोज्य कलकत्तामें दी है। यदि आप नेत्र खोल कर पढ़नेका कष्ट उठावेंगे तो देखेंगे कि भारत-व्यवस्थापक सभामें थोड़ी सी प्रतिनिधि सत्ताके समावेशके विरुद्ध आपकी तपवीर उन लोगोंने भी पसन्द नहीं की जिनकी आप चापलूसी करते हैं और जिनकी राष्ट्रीय परम्पराको मिथ्या करनेकी चेष्टा करते हैं।

सय्यद महोदय, परमात्माके लिये आप अपनी स्थितिपर फिरसे विचार करें और हमें इस समय पर निराश न करें जब कि आशाकी प्रभात हम और हमारी मातृभूमि पर चमकने वाली है।

आप अपने शोशल रिफारमर सन् १२९८ हिजरी अर्थात् १८८१ ई० के पृ० २०७ व २०८ को उलटकर देखें यहां आपने अपनी लण्डनी समुद्रयात्राका हाल देते हुए लिखा है कि मार्गमें आपका मिस्टर डी० फिट्जपेट्रिकसे सम्मिलन हुआ। यह दिल्लीके भूत पूर्व

डि० कमिश्नर थे, इनसे आपकी, पञ्जाब शासनके भले बुरे होनेपर, वार्त्तालाप हुई, जिसमें आप कहते हैं कि मैंने कहा कि पञ्जाबका शासन डेसपाटिक अर्थात् मनमुखी राज्य है यदिच सिक्खोंके शासनसे भला है। फिर आप ही फरमाते हैं:—

"पञ्जाबी चाहे सुखी हों और इस शासनको अच्छा मानते हों क्योंकि वह अभी हालमें ही भाड़से निकालकर धूपमें विठलाये गये हैं, किन्तु हम नहीं पसन्द कर। सकते। पञ्जाब सरकारके भले बुरे होनेका हाल (पञ्जाब सरकार-नियम हीन प्रान्तिक शासन आधीन) हम देहली, पानीपत, रोहतक, हिसार, सिरसा जिले वालोंसे पूछो जो एक समय नियम विशिष्ट शासन गत थे और अब नियम हीन शासनके आधीन रख दिये गये हैं। गदरमें दिल्ली और उसके समीपवर्त्ती जिलोंके लोगोंको जो दण्ड मिले हैं उनमेंसे एक दण्ड यह भी है कि वह नियमहीन प्रान्तके आधीन किये गये हैं। यह बात उस समयकी है जब संयुक्तप्रान्तमें व्यवस्थापकसभा न थी केवल चीफकोर्टकी जगह हाईकोर्ट थी व यहां बोर्ड आव रेवेन्यू था पञ्जाब फिनानशिय कमिश्नर था।

महाशय डेस्पाटिक शब्द आपके ही हैं जो आपने उर्दू महावरेमें प्रयोग किया है, आप नहीं कह सकते कि बलात् यह शब्द मैंने आपके गले बांधा है। अंग्रेजी वेमहावरे होनेकी परवाह न करके आपके वाक्योंका शब्दानुसार भावान्तर मैंने किया है। क्या आप अपने दोषारोपणके (डेस्पाट कहना) सामने भी हमें राजपर अधिक असावधान दोषारोपक कह सकते हैं ?

पुनः पृष्ठ १३२ पर उसी पत्रमें उसी वर्ष 'प्राच्य कौशल व विज्ञान' शीर्षकान्तरगत आप हमें उत्ते-जित करते हैं कि हम इन्हें छोड़कर पाश्चात्य कौशल व विज्ञानकी ओर संलग्न हों। आप तो हमें अपनी मातृ-भाषा भूल जानेकी शिक्षा देते हैं जो असम्भव है, क्योंकि आप हमारी उन्नति पाश्चात्य विज्ञानों पर ही निर्भर करते हैं। आप ही कहते हैं "हम सब तरह राज-भक्त रहें, राजको अपना पृष्ठ-पोषक और शुभचिन्तक मानें साथ ही चेष्टा करें कि हम अपनेको गुलामी और बनेलू दशासे जिसमें अब हैं, निकालें।"

आप ठीक कहते हैं कि दयालु व उदार सरका-रका एक मात्र यही उद्देश्य होना चाहिये कि जिस

राष्ट्रपर शासन करे उसीके भलाईके लिये करे या यों कहो कि मनुष्य जातिकी भलाईके निमित्त शासन करे। इसी पृष्ठ तहजीबुल अखलाक पर आपने कहा है कि "कोई राष्ट्र एक ही बिन्दुसे चलकर दूसरे बिन्दु तक समानान्तर रेखामें सबके साथ नहीं बढ़ सकता। जातियां त्रिभुजाकार रूपिणी गतिसे आगे बढ़ती हैं, जिनका एक सिरा दूसरेसे आगे निकल पड़ता है। यह विचारना कि हम पृथक् विभागोंमें विभक्त न हों यह चाहता है कि हम पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रकाशसे प्रकाशित न हों।"

पुनः १३६ वें पृष्ठपर आपका कथन है कि "मेरा पूरा विश्वास है और सरकारको पूरा विश्वास दिलाना चाहता हूं कि वही पढ़े हुए असन्तुष्ट राजनैतिक समालोचक जिन्हें राजनियमोंकी कठोर आलोचनाका दोष लगाया जाता है किसीसे भी वृटिश शासनका महत्व माननेमें कम नहीं हैं अतः यह न्यायसङ्गत नहीं है कि इस आलोचनाके भयसे शिक्षाको आघात पहुंचाया जाय।" यह आप उन लोगोंसे कहते हैं जिनका यह कथन था कि स्कूलों व कालिजोंने, जिनके द्वारा पाश्चात्य विज्ञानों व भावोंकी शिक्षा दी गई है, प्रजाको राज-शत्रु बना दिया। मैं समझता हूं

कि आप उन वाक्योंको पढ़ेंगे जिनके द्वारा आपने शिक्षित स्वदेशवासियोंको अपनी राष्ट्रीय उन्नतिकी लड़ाई वीरतासे निर्भय होकर लड़नेको उत्तेजित किया है:–"लेकिन हमें अपने राष्ट्रकी भलाई मनमें रखनी होगी और जो कुछ भी दुख व कष्ट मार्गमें पड़ें सबको दृढ़ता व सहिष्णुताके साथ सहन करना होगा। मुझे छिपानेकी इच्छा नहीं है कि वह समयरूपी महान सुधारक इन सब बातोंको करके ही रहेगा और कोई भी विरोध या असन्तोष इन्हें रोक न सकेगा। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि यह तुच्छ हृदयता असन्तोष-अग्निको प्रज्वलित कर रही है और इससे शासक व शासितके अन्तरस्थ वर्तमान सारा प्रेम व सारी सहानुभूति निकल जायँगी।" सर सय्यद आपके देशवासी आपको सच्चा नबी मानते थे और आपके लिखित प्रत्येक वाक्यपर अड़े रहेंगे, किसी विरोधसे न भयभीत होंगे न बहकेंगे, चाहे यह विरोध अब आप ही क्यों न करें। यह क्या कि हमें तो आपने दृढ़ता सिखाई और स्वयम् यही बात न कर सके।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

हम तो साबित कदम हैं लेकिन वृद्ध महाशय फिसल पड़े । हा ! मानवी निर्बलताका कैसा करुणोत्पादक दृश्य है ! ”

देशी स्वेच्छा सेवक सैनिक सम्बन्धमें जिसपर कि इ० ने० कांग्रेसका एक प्रस्ताव है आपके जीवनचरित्रके पृष्ठ ३३२ पर लिखा है कि मार्च १८८३ में जब (कांग्रेसके प्यारे सिकत्तर) ह्यूम महोदयने भारतमें देशी सैनिक स्वेच्छा सेवकोंका पक्ष लिया तो इन्होंने कहा कि “उपद्रवके समय (१८१४ या १८५७ में) मेरे पास एक चतुरङ्गिणी पदचर, असवार और नालिकोंकी इटावामें थी, सबके सब इसमें स्वेच्छा सेवक थे ।”

इसके उत्तरमें जब पायोनियर पत्रने ल० करनल ग्रेहमका पत्र छापा जिसमें मिस्टर ह्यूमके तर्कोंका खण्डन किया गया था । आपका जीवनचरित्र लेखक कहता है कि इस पत्रको पढ़कर आप पायोनियरके उक्त संवाददातापर वेगसे झपट पड़े और उसे एक पत्र लिखा । आपके इस पत्रका कुछ अंश इसी चरितके पृष्ठ ३३४ पर यों उद्धृत हुआ है:—

“मैंने आपका पत्र, मिस्टर ह्यूमके उस पत्रके प्रत्युत्तरमें जिसमें उन्होंने भारतवासियोंके स्वेच्छा

सैनिक अर्थात वालण्टियर बनाये जानेके पक्षमें लिखा था, पढ़ा। भारतवासियोंको वालण्टियर न बनानेसे सरकारका यह अभिप्राय है कि सरकार देशवासियोंका विश्वास नहीं करती। इस परिणामको इस कहावतसे व्यवस्थित करना चाहिये कि—'जो तुम चाहते हो कि हम तुम्हारा विश्वास करें तो तुम्हें हमारा विश्वास करना चाहिये। अभी तक फिरङ्गियों व हिन्दुस्तानियोंके मध्य बहुत चौड़ी खाड़ी है यदि यह न भरी गई इत्यादि।" यह तो आपने १८८३ के मध्यमें लिखा और अब आप १८८७ व ८८ में कहते हैं कि भारतवासियोंको कुछ दरकार नहीं है।

इसी उक्त पृष्ठपर करनल ग्रेहम लिखते हैं कि "जो मैं प्रतिभाषण करता हूं वह यह है कि भारतके समस्त बड़े बड़े स्थानोंमेंसे स्थानिक पदाधिकारियों द्वारा कुछ चुनी संख्या देशी स्वेच्छा सेवकोंकी हो जो कि अच्छे घरानोंके व राज-भक्तिके लिये प्रसिद्ध लोगोंमेंसे हों और यह उसी सेनाध्यक्षके शासनगत रखे जायँ जिनके अधिगत फिरङ्गी स्वेच्छा सेवक रहते हैं। मेरी सम्मतिमें वही अपने दलपति चुनें और जब एकवार काम चल निकले तो मैं उन्हें इस बातकी भी

अनुमति दूंगा कि जब रिक्ति (खाली जगह) हो तो वह अपने ही रँगरूट चुनें।"

आप इतना ही प्रदान करें और हम बहुत दिनों तकको सन्तुष्ट हो जायँगे।

एक दो बात और।

आपने राष्ट्र (नेशन) व राष्ट्रीय (नेशनल) शब्दोंके अर्थ अपनी मेरठकी वक्तृतामें जो किये थे और फिर आपने ही २७ जनवरी १८८४ में जो बतलाये इन्हीं दोनोंका विरोध-साम्य देखिये गुरुदासपूरमें आपने कहा "हम हिन्दू मोहमदन एक मन व एक प्राण हो जावें और मिलकर काम करें, यदि मिले रहे तो परस्पर सहाय्य करेंगे; यदि नहीं, तो एक दूसरेके स्वार्थका विरोध दोनोंके पतन व विनाशका हेतु होगा। (करताल ध्वनि) आपने पुराने इतिहास ग्रन्थोंमें और प्राचीन परम्परासे तुमने देखा सुना व पढ़ा होगा और हम अब तक देखते हैं कि एक देशके निवासी एक जाति कहाते हैं। अफगानिस्तानके जुदा जुदा जिर्गे एक जाति कहाती है, ऐसा ही नाना जन समुदाय ईरानमें बसते हैं, योरोपियन शब्दसे बोधित लोग

विभक्त धर्म्म व विचारके होते भी अब तक एक जाति कहाते हैं।

यदि अन्य देशवासी भी आ बसें तो परस्पर मिल जानेके कारण वह भी एक जातिके अवयव कहाते हैं। अतः प्राचीनतम कालसे ही एक देशके निवासी गणकी एक जाति कहाती है; यदिच वह केचित विशेष बातोंमें एक दूसरेसे अन्तर रखते हों और अपने पृथक् पृथक् लाक्षणिक गुण विशिष्ट हों। हिन्दू व मुसलमान भ्राताओ, क्या तुम किसी अन्य देशको सिवा भारतके बसाते हो! क्या तुम एक देशमें ही नहीं रहते? क्या तुम एक धरती पर नहीं चलते फिरते और एक मिट्टीपर जीवन नहीं व्यतीत करते?

याद रहे कि हिन्दू मुसलमान धर्म्म भेद मात्रके द्योतक हैं, नहीं तो सब लोग क्या हिन्दू क्या मुसलमान यहां तक कि ईसाई भी जो इस देशमें बसते हैं एक ही राष्ट्र हैं। तब यह सब विभिन्न सम्प्रदाय-समूह एक ही राष्ट्र कहा जा सकता है, और सबको और प्रत्येकको देश हितके लिये जो सार्वजनिक काम हों एक होना चाहिये"।

फिर लाहौरमें ३ फरवरी १८८४ को जो वक्तृता आपने लाहौर इण्डियन एसोसियेशनके, अभिनन्दनके

प्रत्युत्तरमें की थी यह है "यह माना कि इस एसो-सियेशनमें अधिकांश हिन्दू हैं तो भी यह प्रकाश उन्हींसे फैला है जिन्हें हम बंगालीके नामसे प्रसिद्ध करते हैं। मैं विश्वास दिलाता हूं कि बंगाली ही हमारे देशमें ऐसे लोग हैं जिनका हम अभिमान कर सकते हैं और यह उन्हींका कारण है कि विद्या, स्वातन्त्र्य और देशभक्तिकी उन्नति हमारे देशमें हुई है। मैं सच मुच कह सकता हूं कि यह (बंगाली) भारतकी विभिन्न उपजातियोंके मस्तक और मुकुट हैं। मेरे मार्गमें भी अनेक बाधायें पड़ीं किन्तु हार्दिक इच्छासे मैंने राष्ट्र सेवा करनी चाही। राष्ट्र (नेशन) शब्दमें मैं हिन्दू मुसलमान दोनोंको लेता हूं, क्योंकि राष्ट्र (कौम) के मैं यही ठीक अर्थ कर सकता हूं"। यहां अन्तमें नेशन शब्दका आपने ही प्रयोग किया है (देखो अपनी पञ्जाबकी यात्रा, मौलवी इकबालअली प्रणीत पृष्ठ १६७ पंक्ति १८ वीं)। पुनः आपके ही शब्दोंमें:—"मेरे लिये यह विचारणीय नहीं है कि उनका धर्म क्या है क्योंकि हम यह बात नहीं देखते ; जो देखते हैं वह यही है कि एक ही देशके वासी हैं, एक ही शासकोंके शासनमें हैं। समस्त लाभोंके मूल स्रोत

एक हैं और दुर्भिक्षके कष्ट भी हम सब एक समान ही भोगते हैं, यही नानाप्रकारके कारण हैं जिनके आधार पर मैं इन दोनों कुलोंको जो भारतमें बसते हैं एक ही शब्दसे पुकारता हूं। हिन्दू शब्द हिन्दुस्तान (भारत) के निवासियोंका वाचक है"।

इन उद्धृतियोंको पढ़ कर हर किसीको आपकी पहिली उच्च और अबकी निच्चस्थितिका परिज्ञान हो सकता है।

विदेशी लोग इन उद्धृतियोंको पढ़कर यह विश्वास न करेंगे कि आपकी यह व प्रसिद्ध मेरठ, लखनऊकी वक्तृताएं वास्तविक एक ही सर सय्यद अहमदखां की हैं जो एक समय अपने उदार हृदयताके अभिमानी थे। इतनेमें तो सन्देह नहीं कि या तो आप उन भावोंके जन्मदाता नहीं हैं या हालकी बातें आपके निज मस्तककी उपज नहीं हैं। बापुरे सर सय्यद, आपको अवश्य इस व्याघातका दुःख होता होगा, यद्यपि प्रकटमें कहनेकी हिम्मत आपमें न हो।

यदि आप अपने देशका पूर्व विश्वास पुनः प्राप्त करनेको उद्यत नहीं तो यदि मैं आपको आपकी सानुकूलताके नाम पर, ईमान और न्यायके नामपर, म-

ह्रान मुहम्मदके नामपर जिनके धर्म्मानुयायी और कुलोद्भव आप अपनेको मानते हैं, आपके पुराने भक्त व मित्र मेहदीअलीके नामपर जिन्होंने एकबार अभिमानसे दुनियांको दिखलया था कि मुसलमानी शासन प्रजासत्ता-शासन सिद्धान्तपर थी (देखो अपना शोशल रिफारमर १२९० हिजरी पृ० १३६ पंक्ति ८-२३) और अन्ततः आपके मुहम्मडन एङ्गलोओरियण्टल कालेज अलीगढ़के छात्रोंके नामपर जिन्हें अपने उन सिद्धान्तोंको सिखलाया जो अब आपको अच्छे नहीं लगते आपको दोषी ठहराता हूं तो न्याय संगत है ।

परिशिष्ट २

लालाजीके लेख।

(१) भारतकी आवश्यकता—

मेरे मनमें यह एक प्रश्न सोते जागते कष्ट देता रहता है कि हममें बलवत्तम धार्मिक सचाई और नैतिक बलके होते भी हम क्यों इतनी शताब्दियोंसे अन्यान्य जातियोंके आधीन दासोंकी भांति जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह लोग न केवल शारीरिक और आत्मिक बलमें ही किन्तु चातुरी और उद्युक्ततामें भी इतने बलोतर नहीं कि हमें आधीन रख सकनेके योग्य हों। प्रत्यक्ष है कि समाजका जीवन इस बातपर निर्भर होता है कि समाजके प्रत्येक अङ्गी या सदस्य अपने सामाजिक दायित्वोंको समझें। अपने अपने दायित्वका जितना गहरा व अधिक ध्यान व्यक्तियोंमें होगा उतनी वह सोसाइटी (समाज) दृढ़ और बलवती होगी। ठीक इसी बातकी हममें कमी है जो हमारे जातित्वके भावमें बाधक है। शारीरिक बलके देखते हम दुनियाकी सब जातियोंके समान हैं। उन

उच्च घरानों व वर्गोंके हिन्दुओंको तो जाने दो जो अपनी प्रतिष्ठा शरीरकी दुर्बलता, कोमलता और स्त्रियोंका सा रूप रङ्ग बनानेमें समझते हैं अथवा शरीरके मोटेपनको ही समाजमें प्रतिष्ठाका माण प्रमाण करते हैं, निकम्मापन ही उनके जीवनका उद्यम है, इनके अतिरिक्त हमारे देशवासी समष्टि रूपसे उत्तम शारीरिक बल रखते हैं और सब तरहकी कठिनता सहन करने योग्य हैं, यद्यपि इनकी शारीरिक आवश्यकताएं बहुत कम पूरी होती हैं—मोटा झोटा खाते हैं, फटा पुराना पहिनते हैं, बन्द और मलिन घरोंमें (उचितसे अधिक जन एकत्र होकर) रहते हैं, तो भी इनमें ऐसे सिपाही जन्म लेते हैं जो संसार भरकी शक्तियोंमें उत्तम श्रेणीके गिने जाते हैं। यह सिपाही चाहे राजपूत हों, सिख, पुर्बिया, मरहटा, गोरखा या पञ्जाबी मुसलमान हों। जब कभी भी इनमें से किसीको बारी बारीसे औसर मिला है रण-क्षेत्रमें समर निपुणोंसे उच्चतम प्रशंसा प्राप्तकी है। बृटिश राजके पहिले जो भूलें इनसे हुईं और इन्होंने हार उठाई उनकी बाबत चाहे भी जो सम्मति लोग दें परन्तु इनकी बीरता और शौर्य्यपर कोई उँगली नहीं

उठा सकता। इतिहास इनके पवांरोंसे भरा है। बुद्धिमत्ता दिखानेके अवसरोंपर भारत माताके प्राण-प्रियोंको लज्जित नहीं होना पड़ा। हिन्दू सभ्यता और नीति, बुद्धदेवकी सुकृतियाँ इनके चिरस्थाई स्मारक हैं। मुसलमान अत्याचारोंसे पीड़ित हिन्दू जब दूर दूर जङ्गल पहाड़ोंमें शरण ढूंढ़ते थे तब भी इनमें वह अजानबाहु वीर उत्पन्न हुए हैं कि जिनके नाम आकाशमें नक्षत्रोंकी भांति चमक रहे हैं। फिरङ्गी शासनमें भी जहां भारतके विद्वानोंको अवसर मिले हैं यह पीछे नहीं रहे। देशमें बोस, राय, रामचन्द्र, प्राञ्जपे, रानडे इत्यादि इत्यादि अनन्त महज्जन उत्पन्न हुए हैं जिनके पवित्र नामसे भारतका एक एक प्राणी परिचित है। धार्मिक जगतमें भी देखें तो सारे योरोपमें कौन ऐसी भूमि है जो उपनिषदोंके अनजान कर्त्ताओं और बुद्ध व शङ्कर सरिस विद्वानोंका पटतर दिखा सकती है। दर्शनको लें तो किस देशमें षड्-दर्शनोंके अमरकर्त्ताओं और उनके अनेक टीकाका-रोंकी सत्य प्रियता, धार्मिकता और उच्चभावोंका आदर्श देखनेमें आता है? क्या शौर्य्यमें हमारे राजपुत्रोंके काम आश्चर्य्यजनक औपन्यासिक घटनाओंसे किसी

प्रकार कम हैं। फिर राष्ट्रीयताकी तुलामें क्यों हमारा पलड़ा नीचा है? क्या कारण है कि हम उभर नहीं सकते? हममें गम्भीरता और प्रेम व सहनशीलताकी कमी नहीं। दुनियामें कौन हिन्दूधर्मका (आर्य्यत्वका) सामना कर सकता है? हमने वर्त्तमानमें देश प्रेम सम्पन्न शिक्षा सौ वर्ष पाई है तो भी वेवश व निर्बल हैं। चिल्लाते रहनेपर भी हमारी राष्ट्रीयता भयमें है, करुणोत्पादक अपील करते रहनेपर भी हमारे देशके शासन पद्धतिमें जो सुधार होना चाहिये न हुआ। क्या कारण है कि आज पर्य्यन्त हमने कुछ भी व्यवहारिक स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं किया? राजनीतिको छोड़कर सामाजिक सुधारमें भी प्राप्त काम नहीं हुए, और बा० राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और महादेव गोविन्द रानडेकी अटूट चेष्टाओंका जो फल होना चाहिये नहीं हुआ—कारण क्या है? सबका यही उत्तर है कि हमारी एक एक व्यक्तिमें वह सामाजिक दायित्व प्रस्तुत नहीं है जो समाजके प्रत्येक व्यक्तिके लिये आवश्यक हैं। जिन्होंने गले फाड़ फाड़ बाल विवाहके विरुद्ध व्याख्यान दिये उन्होंने ही अपनी ७ वर्षकी लड़कीका विवाह किया।

जिन्होंने प्रचारके काममें अपने महानुभावनाका प्रकाश किया उन्होंने ही जब किसी जातीय संस्थाको सहायताकी आवश्यकता पड़ी तो मुंह मोड़ लिया। प्राय: देशभक्त सम्पन्न और सम्पत्ति वाले हैं किन्तु इन्हें जातिकी आपदाओंके दूर करनेकी चिन्ता नहीं। हमने बहुधा अच्छे अच्छे देश प्रेमियोंको देखा है कि उनका कोई देश-भाई जब किसी फिरङ्गीके क्रोधाग्निमें पड़ा है तो उन्होंने बे परवाहीसे उसकी ओर दृष्टि भी नहीं उठाई। इन्हीं बातोंके आधारपर मान लिया गया है कि कोई भारतवासी कदाचित किसी आन्दोलनमें नहीं पड़ता जब तक उसे किसी प्रकारकी अर्थ-प्राप्तिकी आशा न हो। सार बात यह है कि चिर-कालकी गुलामी और फेरफारने आत्माभिमान हममेंसे विनष्ट कर फेंका।

अब हमें सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि हम अधिकतर समाजके लाभोंका सदा पक्का व प्रधान ध्यान रक्खें और अपने व्यक्तिक लाभोंको उनके आधीन कर दें। अन्ततः हमारी पहिली आवश्यकता यह है कि प्रत्येक भारतवासी पूरी पूरी देशसे सहानुभूति रखने वाला हो और देशके प्रति अपने

कर्त्तव्योंका समझने वाला हो। वह इस बातका पूरा विश्वास करले व तदनुकूल ही व्यवहार करे कि देशके स्वार्थ बहुत बड़े व प्रधान हैं और निज स्वार्थ पर प्रधानता रखते हैं। इस बातका उसी भांति देशमें प्रचार किया जाय जैसे किसी धर्म्मका प्रचार होता है क्योंकि यह भारतवासियोंकी मुक्तिका मार्ग है। इस प्रचारके निमित्त हमें ऐसे प्रचारकोंकी आवश्यकता है जो अपने प्रचारके आप सदेह उदाहरण हों। कमसे कम थोड़े थोड़ेसे ऐसे प्रचारक सब प्रान्तोंमें हों तो आशा हो सकती है कि देशभक्तिकी नीव देशमें दृढ़तासे स्थापित हो जाय और जल्दी ही देशमें जातित्वका भाव उत्पन्न हो जाय बिना इसके हम चाहें वर्षों तक चिल्लाते रहें एक इञ्च भी आगे न बढ़ सकेंगे।

२ शिक्षामें देशभक्तिकी आवश्यकता।

देशभक्ति वह मानसिक उत्तेजना है जिससे प्रभावित होकर किसी जातिकी व्यक्तियां अपने निज लाभों व स्वार्थोंको या अपने निज सुख और भोग विलासको देशकी सार्वजनीन रक्षा और समुन्नति

न करें जिससे हमारे देश व हमारी जातिको हानि पहुंचनेका सन्देह हो, चाहे इस कामके करनेसे हमारा निजका कितना ही लाभ क्यों न हो। दूसरे यह कि सदा ऐसे काम करनेके लिये तय्यार हों, जो जातिका जातीय जीवन स्थिर रखने व जातीय उन्नतिके मार्गमें दृढ़तासे चले जानेके लिये आवश्यक हों, चाहे इस कामके करनेमें हमें व्यक्तिक कितना ही कष्ट हो कितनी ही हानि हो। पहिले सिद्धान्तके अनुकरणसे ही हम देशभक्त या जाति भक्त बन सकते हैं। इस-समय रूसवासी व जापान निवासी मनुष्योंने न केवल अपनी वीरता व शूरतासे और रणकौशलमें अपने पूर्ण ज्ञानसे संसारको चकित कर दिया प्रत्युत इन्होंने अपनी देशभक्ति और राष्ट्रीय मनोवृत्ति (नेशनल फीलिंग) का ऐसा अनुपम उदाहरण स्थापन किया जिसके समक्ष सारे योरोपवाले और अमरीकावाले भी मत्था टेकते हैं। योरोपवालोंका बहुत दिनोंसे यह ध्यान था कि देशममत्वका उत्ताप केवल योरोपीय जातियोंमें ही पल पुस सकता है और एशियाके मस्तक और अन्तःकरणगत जल वायुमें इस भावके उगने और हरे-भरे होनेके लिये यत्किञ्चित भी अनुकूलता नहीं।

किन्तु जापान केसरियोंने थोड़े ही महीनोंमें यह दिखा दिया कि योरोपवालोंका विचार असत्य था, उनकी हुमहुमी निर्मूल और उनका घमण्ड काल्पनिक था। यहांतक तो हमें विश्वासका कारण है कि एशियाई जल वायु व रुधिरमें कोई ऐसा दोष नहीं जो देशभक्तिके उत्तापका विनाशक हो और उसके फलप्रद होनेमें बाधक हो। जब जापानी देशभक्तिसे प्रभावित होकर ऐसे ऐसे वीरकर्म्म कर सकते हैं तो और भी एशियाई भूमिमें यह पौदा क्यों नहीं रूप सकता? उग सकता है, यदि उसे बुद्धिमानीसे वैज्ञानिक रीतिपर लगाया जाय और नियमानुसार सींचा जाय और सर्दी गर्मीसे सुरक्षित रखा जाय और उसके पलने व फलने फूलनेके लिये जो प्रतिबन्ध हैं पूरे किये जायँ।

एक अमरीकन, शिक्षा-विज्ञानके ज्ञाता कहते हैं कि जातीय उन्नति स्थिर रखनेके निमित्त और अनेक अनिष्टोंसे उसे बचानेके लिये आवश्यक है कि विभिन्न सामाजिक विज्ञानकी शिक्षा सम्बन्धिनी पूंजीमें उसे उचित स्थान हो। ऐसा न हो कि हमारी शिक्षा केवल उन उत्तेजनाओंको ही अधिक महत्व प्रदान करे जो व्यक्ति और घरानेसे सम्बन्ध रखती हों और व्यक्तिक

व शारीरिक उन्नतिकी सहायक हों और दूसरी उत्ते-जनाओंको भुला दें, किन्तु व्यक्तिक व घरू उन्नतिके-साथ साथ जातीय व देशीय उन्नतिके भावोंको भी समुन्नत और दृढ़ करें।

जैसे शारीरिक स्वास्थ्य, व्यक्तियोंकी जीवनयात्राके लिये अन्न कमाना व ईश्वरके जाननेके लिये धर्म्मशिक्षा आवश्यक है वैसे ही राष्ट्रीय यन्त्र-निबन्धके लाभप्रद अङ्ग बननेके लिये व देशभक्त बननेके लिये आवश्यक है कि उन विद्याओंको भी पर्य्याप्त स्थान मिले जिनसे यह उत्तेजना (देशभक्तिकी उत्तेजना) भी बल पाती है। यदि प्रथमोक्त आवश्यकताओंकी ओरसे असाव-धान रहना हानिप्रद होगा तो इसकी ओरसे भी असा-वधान रहना निस्सन्देह हानिप्रद होगा।

इङ्गलैण्डका शासन।

(राजनैतिक निबन्ध)

इङ्गलैण्ड देशके राजनैतिक निबन्धको लिमिटेड मोनर्की कहते हैं। मोनरकी एक व्यक्तिक (मनमुखी जिसका ठीक ठीक भाषान्तर एक-मुखी राज है) शासनको कहते हैं। लिमिटेड (परिमित या महदूद)

मानरकी (एक व्यक्तिक शासन) वह है जिसमें राज तो व्यक्तिक हो परन्तु राजाके अधिकार परिमित हों। इंगलिस्थानका भी राज्य ऐसा ही है, साधारणतया राजा राजनैतिक बातोंमें अधिक हस्ताक्षेप नहीं करते। समस्त राजनैतिक काम काज पार्लीमेण्ट और आमात्योंके हाथमें हैं। पार्लीमेण्टके सदस्य दो प्रकारके हैं हाउस आव लार्ड्सके सदस्यगण और हाउस आव कामन्सके सदस्यगण। मात्र पार्लीमेण्ट शब्द प्रायः इङ्गलिस्थानमें हाउस आव कामन्सका ही द्योतक होता है। हाउस आव कामन्समें प्रजाके प्रतिनिधि या स्थानापन्न लोग बैठते हैं। नगरवार अथवा जिलेवार निवासियोंकी संख्याके अनुसार इन प्रतिनिधियोंकी संख्या नियत होती है। हाउस आव कामन्सके सदस्य कई दलोंमें विभक्त हैं प्रधान दो दल लिबरेल दल और कान्सरवेटिव दल कहलाते हैं। इन दोनों पार्टियोंके आदिमें ऐतिहासिक नाम ह्विग और टोरी हैं। लिबरेल दलमें दो प्रकारके उपदल हैं एक रामसी लिबरेल दूसरे रेडीकेल। रेडीकेल उन्हें कहते हैं जो प्रजाके स्वत्वों ही के पक्षपाती हैं और बहुत ही स्वतन्त्र स्वभाव होते हैं (यह लोग मनुष्य जातिके प्राकृतिक मूल स्वत्वोंकी

रक्षा करना अपना धर्म्म समझते हैं इसीसे रेडीकेल अर्थात् मौलिक सिद्धान्तानुयायी कहाते हैं। राधे)। कान्सरवेटिव दलमें भी दो शाखाएँ हैं; एक तो वह जो पुरानी लकीरके फकीर हैं दूसरे वह जो उन्नतिके सहायक (सुधारक) हैं। जब स्वर्गीय मिस्टर गलेडिस्टन (महोदय) ने आयरलैण्डको होमरूल देनी चाही तो राजसी लिबरेलके दो टुकड़े होगये एक होमरूल नीति (पालिसी) के सानुकूल दूसरे प्रतिकूल। यह होमरूलके प्रतिकूल दलवाले कानसरवेटिव लोगोंमें आ मिले परन्तु इन्होंने अपनेको कानसरवेटिव कहानेसे संकोच करनेके कारण यूनियानिष्ट नाम धारण कर लिया अर्थात् आयरलैण्ड व इङ्गलैण्डकी राजनैतिक एकताको संयोजित रखनेके पक्षपाती। इन दो बड़े दलोंके सिवा और भी तीन प्रकारके सदस्य हैं। प्रथम आयरलैण्डके वकील जिनका नाम नेशनेलिष्ट (राष्ट्रीयदल) दल है इन्हींका दूसरा नाम होमरूलर (स्वराजी) भी है, यह वह लोग हैं जो इस बातकी चेष्टा करते हैं कि आयरलैण्डकी पार्लीमेण्ट पृथक् हो। द्वितीय, लेबर सदस्य (श्रमी दल) यह श्रमोपजीवियोंके प्रतिनिधि हैं, तीसरे इण्डिपेण्डेण्ट अर्थात्

स्वतन्त्र जो किसी भी दलमें नहीं हैं और जैसे जी चाहता है वैसे वोट अर्थात् सम्मति देते हैं।

कन्सरवेटिव और लिबरेल दलोंमें से जिसके पक्षमें अधिक सदस्य संख्या होती है उसीके हाथमें शासन वलिगा (राजकी लगाम) रहती है अर्थात् उसी दलमें से आमात्यगण निर्वाचित होते हैं। इसका नियम यह है कि प्रत्येक पार्लमेण्टके लिये चुनावके पीछे राजाधिराज उस दलके नेताको आह्वान करते हैं जिसके पक्षमें नवीन चुनावके अधिकांश सदस्य (मेम्बर) हों, उसीको प्रधानामात्य पद प्रदान करके आज्ञा देते हैं कि वह शेष आमात्यसदस्योंको नियत करे। जबतक इस पक्षकी अधिकता हाउस आव कामन्समें रहती है और जब तक उस पार्टीके विरुद्ध कोई सम्मति पास नहीं होती उसीका मन्त्रित्व स्थिर रहता है किन्तु जब कभी हाउस आव कामन्समें कोई मत बहुमतासे आमात्यके विरुद्ध ग्रहण (पास) हो जायँ तो वह आमात्य इस्तेफा अर्थात् त्यागपत्र दे देता है। इसके पद त्यागनेपर राजाधिराज दूसरे दलके नेताको बुलाकर उसे आमात्य नियत करते हैं और वह अपना नेतृ-यन्त्र (मन्त्रीगण समुदाय) स्थापन करता है। इस प्रका-

रके आमात्य समूहका नाम शासन वा गवर्नमेण्ट है। यदि प्रधान आमात्य हाउस आव कामन्सका सदस्य हो तो वह हाउसका नेता कहाता है और जो हाउस आव लार्ड्सका नेता (लीडर) हो तो अपने आमात्योंमें से किसीको हाउस आव कामन्सका नेता निर्वाचित करता है।

उक्त कथनसे ज्ञात होता है कि आमात्य-यन्त्रका आधार हाउस आव कामन्सकी वोटपर होता है। हाउस आव कामन्समें जिस पार्टीका बल हो उसीका नेता प्रधानामात्य होता है। कोई कर विना हाउस आव कामन्सकी सम्मतिके नहीं लग सकता। हाउस आव कामन्समें आमात्यका दल एक ओर बैठता है और उसरपक्ष (विरुद्ध पार्टी) एक ओर और इसी भांति स्वतन्त्र सदस्यलोग (इन्डिपेण्डेण्ट) भी पृथक् बैठते हैं। हाउस आव कामन्सका प्रधान, स्पीकर कहलाता है, इसका केवल यह काम है कि सभाका प्रबन्ध और नियम स्थिर रखे, और प्रणाली और पद्धतिसम्बन्धी जो नियम निश्चित होचुके हैं या जो परम्पराके कारण स्थापित होचुके हैं उनका पालन कराये।

हर कोई सदस्य जो चाहता है बोलनेको खड़ा होजाता है। जब कभी एकसे अधिक सदस्य बोलनेके लिये खड़े होजायँ तो प्रधान अर्थात् स्पीकर (वक्ता) व्यवस्था देता है कि कौन बोले। सदस्य अपने ही स्थानपर खड़े होकर बोलते हैं। स्पीकर यह भी तय करता है कि मत बाहुल्य किस पक्षमें है, यदि इसमें वैमत्य हो तो सम्मतियां गिनी जाती हैं। दो कठहरे बने हैं जिनको डिवीजन लोबी कहते हैं, सम्मति-प्रदानकालमें दोनों पक्ष अर्थात् पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष अपने अपने कठहरेमें चले जाते हैं और हरेक पक्षकी ओरसे परिगणक नियत हैं वह गिन लेते हैं। सम्मति देनेके समय घण्टी बजती है और जो सदस्य उस-समय बाहर होते हैं वह भी आजाते हैं। सम्मति देनेके समय बाहिरी दर्शकोंको जो आये हों, बाहर कर देते हैं।

पार्लीमेण्ट प्रायः २ बजे तीसरे पहर बैठती है। सायङ्कालमें बियालूके लिये दो घण्टेका अवकाश मिलता है और इस बीचमें बन्द रहती है। इसके पीछे रातको १२ बजेतक बैठी रहती है। कभी कभी और भी देरतक। जुदा जुदा सदस्योंको [illegible]दके भी-

तर अलग अलग कमरे मिले होते हैं वहां यह अपने दूसरे कामको भी किया करते हैं। मेम्बर आते आते रहते हैं, भोजनका प्रबन्ध भी इस भवनमें है। लेखनी, कागज, मसि बहुत उत्तम पुस्तकालय समाचारपत्र आदि सब अलग अलग कमरोंमें लगे हुए हैं। सब आवश्यक प्रबन्ध उत्तम है। मेम्बर लोगोंमें, कोई टोपी उतारकर बैठता है कोई पहने हुए। लेटनेके लिये गद्देदार बेंचें हैं। कोई टांग फैलाकर बैठता है कोई बैठा बैठा सो जाता है।

विपक्ष दलका नेता प्रधानामत्यसे दूसरा पद रखता है और इसकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है। वक्तृताके मध्यमें अनेकबार विपक्षके लोग बोलते व टोकते रहते है, किसी किसी समय प्रश्नोत्तर और टीका टिप्पणी भी साथ ही होती जाती हैं। इङ्गना, संकेत और ताने, घात, प्रशंसा, घृणा सूचक ध्वनि भी साथ ही आती रहती हैं। सभ्यताकी हँसी दिल्लगी भी होती जाती है।

जब कभी कोई झगड़ेकी बात पार्लीमेण्टमें उपस्थित होती है तो हाऊस आव कामन्सकी कार्य्यवाही बहुत ही मनभावनी हो जाती है पहिले पहिल तो

मनुष्यको हाउस आव कामन्स एक गम्भीर और व्यवस्थापक सभा नहीं जान पड़ती किन्तु पाठशालाके लड़कोंका वादानुवाद परिज्ञात होता है, जहां कि हल्ला गुल्ला होता रहता है। किन्तु कुछ समयके पीछे उसे जानकारी हो जानेपर इस रीतिके गुण दोष सब प्रकट होजाते हैं। बहुत कम ऐसा होता है कि हाउस आव कामन्समें जो वादानुवाद होता है उसका इस सभाके सदस्योंपर प्रभाव पड़े। प्रायः लोग अपने दलके साथ होकर सम्मतियां देते हैं, यदा कदा ऐसा भी होता है कि लोग अपने विचारोंके अनुसार या अन्य किसी हानि लाभके विचारसे अपने दलके विरुद्ध या दलसे पृथक् सम्मति देते हैं। कईबार ऐसा होता है कि वादानुवादमें बहुत कम लोग भाग लेते हैं और श्रोतालोग भी थोड़े ही होते हैं किन्तु सम्मति देनेके समय बहुतसे लोग आजाते हैं और अपने अपने दलमें मिलकर सम्मति देते हैं। प्रत्येक दलमें एक सदस्य ऐसा निर्वाचित होता है जो मेम्बरोंको उपस्थित होनेकी ताकीद करे और सम्मति देनेके समय सबको एकत्र करे। यह मेम्बर संग्राहक कहाता है और प्रतिष्ठित माना जाता है।

कभी कभी सदस्य प्रधान (स्पीकर) की आज्ञा भङ्ग करते हैं तब वह पार्लीमेण्ट पुलिस अफसरको बुलाता है और उस सदस्यको बाहर निकाल देता है, ऐसा भी हुआ है कि सदस्योंने बाहर जानेसे इनकार कर दिया तब पुलिसने उन्हें बलात् बाहर निकाला। आयरलैण्डी होमरूलर प्रायः ऐसा करते हैं। पार्लीमेण्टमें जो कथनोपकथन होते हैं उनमें अत्यन्त स्वतन्त्रता पूर्वक खुल्लमखुल्ला एक दूसरेपर दोषारोपण करते हैं। कई बार तो बहुत ही मुंहफट भाषण होते हैं। प्रधानको विशेष दशामें अर्थ दण्ड करने और दायित्व आरोपित करके उत्तर मांगनेके भी अधिकार हैं। पार्लीमेण्टके अधिवेशन-गत जो कोई सदस्य आलस्य करे तो उसकी सुनाई साधारण जज या मजिष्ट्रेट नहीं कर सकते। पार्लीमेण्टके कमरेमें सदस्योंकी बेंचोंके पीछे कुछ बेंचें दर्शकोंके लिये रहती हैं और ऊपरकी गेलरी (दुछत्ती या सायबी) भी इसी अभिप्रायसे हैं, स्त्रियोंकी गेलरी पृथक् होती है इसमें हाउसकी ओरको कांच लगे हैं।

पार्लीमेण्टके सदस्योंके पास हाउसके अधिकारीके हस्ताक्षरित कार्ड रहते हैं। जो वह अपने मित्रोंको

तमाशा देखनेके लिये दे सकते हैं। संवाद्पत्रोंके सम्वाद्दाताओंके लिये एक पृथक् गेलरी है। अनेक समाचारपत्रोंने हाऊस आव कामन्समें निजके टेलीफून व टेलीग्राफ लगा रखे हैं। हाऊसकी ड्योढ़ियोंपर और अन्य संयुक्त कमरोंमें राजके बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंकी मूर्त्तियां (स्टेचू) खड़ी हैं। सम्पादक अपने कमरेमें बैठा इधर तो वक्तृता सुनता है उधर वही वक्तृता उसके आफिस (कार्य्यालय) में छपती जाती है लन्दनके बाहरके नगरोंके कतिपय समाचारपत्रोंने अपने अपने टेलीफून व टेलीग्राफ भी लगा रखे हैं।

स्पीकरकी मेज जुदा होती है, उसे एक विशेष प्रकारका वस्त्र धारण करना पड़ता है और एक बाल (केस) दार पञ्जाबी ढङ्गकी टोपी पहिननी पड़ती है। इसके समक्ष कई मेजोंपर इसके (स्पीकरके) लेखक बैठते हैं इन कलारकों (लेखकों) के भी वस्त्र नियत आकार प्रकारके स्पीकरकी ही भांति होते हैं। सामने एक मेजपर स्पीकर अर्थात् प्रधानका दण्ड (राजयष्टिका या असा) धरा रहता है। जब प्रधानजी आसनासीन नहीं होते अर्थात् स्थानपर नहीं होते तो यह दण्ड नीचे धर दिया जाता है और जब स्थानपर आते

हैं तो फिर मेजपर स्थापित कर दिया जाता है। स्पीकरकी आज्ञा तुरन्त पालनकी जाती है और वह प्रायः दलका भी पक्षपात नहीं करता। हाऊसके कामको सूची, प्रोग्राम पहिलेसे ही प्रकाशित कर दिया जाता है। सभा बैठनेपर पहिले सदस्योंके प्रश्नोंका उत्तर आमात्योंकी ओरसे दिया जाता है, तदनन्तर न्याय निर्माण सम्बन्धी काम होते हैं। हाऊसके मठ-शिखरपर इंगलैण्डका झण्डा लहराता है, पार्लीमेण्ट विसर्जन होनेपर यह झण्डा नीचा कर दिया जाता है। लण्डनके महती लाठके शिखरपर एक प्रकार विशेषका आलोक होता है जो बहुत दूरसे दीखता है। इससे लोगोंको ज्ञात होता रहता है कि पार्लीमेण्ट सभा बैठी है। जब सभा विसर्जन हो जाती है तो यह प्रकाश भी बढ़ा दिया * जाता है।

---

* अन्त कर देना। यह हिन्दीका महावरा है कि किसी वस्तुके अभाव होने या करनेको बढ़ाना या बढ़ना कहते हैं। जब घरमें कोई पदार्थ नहीं रहता तो स्त्रियां कहती हैं—अमुक पदार्थ बढ़ गया अर्थात् खरच होगया अब नहीं रहा। दीपक बुझ जाता है तो कहते हैं दीपक बढ़ गया। इसी तरह द्वार बन्द करनेको किवाड़ फेर दो या मार दो भी कहते हैं।

लाला लाजपतराय अमरीका और योरोपके अनेक विभागोंमें फिरे हैं। आपने इताली और उसके नगर फ्लारेंस, मीलांन, जनेवा और नेपिल्स आदि देखे हैं। यहां ही महात्मा मेजिनी और उसके महामान्य शिष्य पुरुषाल गेलीवालड़ीका प्रादुर्भाव हुआ था। मेजिनी १८०५ में जन्मा था इसका चरित भी सूक्ष्म-रूपसे लालाजीने लिखा है। आपने योरोप अमरीकाकी यात्रा समाप्त करके स्वतन्त्रताकी खींच तानपर यह लेख लिखा है:—

स्वतन्त्रताके लिये हमारी तनातनी।

योरोपमें सब देशवासियोंका जीवन स्वत्व व स्वतन्त्रताके लिये एक लगातार और अनन्त तनातनीमें बीतता है। सभ्यताका अभीष्ट यह है कि जनपदका शासन, जनपदकी सम्मति जनपदके लिये प्रत्येक देशका मानस्तम्भ है। संवादपत्रों और प्लेटफार्मे अर्थात् सभा-मण्डपसे यह ध्वनि निकलती है कि "जनपदके स्वत्वा-पहारी (स्वत्वोंको हड़प करनेवाले) का नाश कर दो।" जब गवर्नमेण्ट कोई काम प्रजाके विरुद्ध करती है तब इस बातका पूरा प्रमाण अजनबोंको मिल जाता है।

इङ्गलैण्डमें टेम्स नदीपर होकर ट्रामगाड़ीका आना प्रजाकी सुविधाके लिये जब हाउस आव कामन्सने पास कर दिया और हा० आव लार्डसने उसे काट दिया तो प्रजा बिगड़ी, मारे उत्तेजनाके विक्षिप्त होगई। सब ओरसे यही सुननेमें आता था कि "धनिकोंको उड़ा दो" "इन पुस्तैनी अर्थात् पीढ़ियोंके चोरों, डाकुओंको नष्ट कर दो।" गली गलीमें यही कथा, यही बात, जिधर देखो उधर लार्टोंके लिये प्रजा दण्ड-व्यवस्था दे रही थी, संवादपत्रोंमें धिक्कार, बाजारोंमें विरोध, घरोंमें गाली दी जाती थीं। लिबरेल दल तो प्रत्यक्ष यह भाव रखता था; कान्सरवेटिव दल भी इतना डर गया था कि लार्टोंका साथ न दे सकता था।

इसके थोड़े दिन पीछे आयरलैण्डके प्रश्नोंकी बाबत हार हुई। इसपर खूब हलचल मची। एक रेड आर्टिकिल नामक पत्रने लिखाः—

"राजा मरगया है, अमीरोंने तुरन्त उसकी जगह अपना शासन जमा लियाहै। वह (शासन) रूसके जारकी भांति लोकमतपर हँसता है। डरपोक अपराधी उसकी शरण हैं और पुस्तैनी चोर उसके सहायक।"

फिर सरकारने बेकारोंके उद्धार व पालन प्रबन्धका खसड़ा (बिल या पाण्डु लिप) अपने यहां

उपस्थित किये जानेसे इनकार कर दिया, इधर हजारों ठलुओंने लन्दनपर चढ़ाई बोल दी। मानचेष्टरमें एक वक्ताने कहा कि "निस्सन्देह जब बेकार लोग लन्दनको पधारेंगे तो मार्गमें जिन नगरोंमें होकर वह निकलेंगे उन नगरोंको पर्य्याप्त दण्ड मिल जायगा।" दूसरेने कहाः—"जो मनुष्य जीवन सरकारकी समझमें ध्यान देने योग्य नहीं है तो हम बेकार लोग धन दौलत छीननेमें भी न चूकेंगे।" अन्तमें मसद्दा पेश हुआ और कानून बन गया।

योरोपके दूसरे भागोंमें एनारकिष्ट लोग राज और राजकर्म्मचारियोंपर दबाव डालकर अभीष्ट सिद्ध करते हैं। किन्तु यह बात अच्छी नहीं है।

अब भारतकी ओर ध्यान दें तो यहांके नेता ही जानते हैं, न जनपद ही जानता है कि स्वतन्त्रता क्या चीजहै। स्वतन्त्रताका एक अंश प्राप्त करनेके लिये कितना आत्मोत्सर्ग करना पड़ता है और क्या क्या यत्न करने पड़ते हैं। हमारे कितने मित्र कहते हैं हम राजनैतिक स्वत्वोंके योग्य नहीं, लेकिन क्यों, जिस चीजकी हमें आवश्यकता है उसके योग्य होनेके लिये हमने कौनसे आत्मोत्सर्गसे काम लिया है? बड़े दिनोंमें छुट्टियोंका

मजा लूटनेके लिये वार्षिक काँग्रेसमें सम्मिलित होनेके सिवा हमने कौनसा कष्ट सहा है ?

निस्सन्देह कोई कोई महाशय इसके अतिरिक्त निबन्ध लिखते हैं वक्तृताएं देते हैं और कुछ रुपया पुलीटिकेल निधि (फण्ड) में भी देते हैं, लेकिन जो वह विलासितामें, मजा उड़ानेमें व्यय करते हैं उसको कौनसा भाग यह चन्दा होता है ? यह मत पूछो, इसके पूछनेसे वह लज्जासे मुंह छिपा लेंगे ।

जो कहें क्यों भाई, इनकी बाबत ऐसे कठोर भाव मत करो इनके बड़े बड़े कुनबे, बेटे, पोते, बेटी, बहुएं, माताएं-इन पर ही निर्भर हैं, इन्हें अपना भी पालन पोषण करना पड़ता है फिर कुछ सम्पत्ति मरनेपर भी छोड़नी पड़ती है । निस्सन्देह यह सब कार्य्य सम्पादन करने पड़ते हैं और जो वह ऐसा करते हैं तो हमें इसके लिये उनसे नाराज भी न होना चाहिये, किन्तु हमारा केवल यह कथन है कि वह अपनेको देशभक्त न कहें ।

हमारी तुच्छ बुद्धिमें देशभक्त कहलाने योग्य वही व्यक्ति है जो सिवा अध्यात्मके, किसी दूसरी चीजको अपने देशसे अधिक न जानता हो, न प्यार करता हो ।

हमारे पिछले काम हमें बता रहे हैं कि हमने स्वतन्त्रके लिये अभी चेष्टा करना आरम्भ भी नहीं किया। हमने अभीष्ट स्थल तक पहुंचनेके लिये पैर भी नहीं उठाया। स्वतन्त्रताके अरुणोदयके विकाशके पूर्व जिन चिन्होंका होना आवश्यक है उन्हींका अभाव है।

कहां हैं देशके राजनैतिक दर्शनज्ञ जो दिन रैन सोते जागते राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्तिके साधन खोजते रहें, वह सन्यासी कहां हैं जिनके जीवनका पवित्र उद्देश्यमात्र स्वतन्त्रताकी शिक्षा देना हो, जो सूली पर चढ़ते हुये भी यह शब्द दुहरा सकें-"वह यह हैं मैं. उनको हिलते देख रहा हूं"।

वह सौदागर कहां हैं जो केवल इसी आन्दोलनके निमित्त धन उपार्जन करें और एकत्र करें और आप सदा सादा निर्धन-जीवन व्यतीत करें। वह लोग कहां हैं जो स्वतन्त्रताके लिये सब प्रकारके दुःख उठावें और सिद्ध कर दिखायें कि आत्मोत्सर्गियोंका रक्त धर्म्मका बीज है। सार यह कि वह लोग कहाँ हैं जो राजनैतिक स्वतन्त्रता और स्वत्वोंका रगड़ा स्थिर रखनेके लिये उसे धर्म्मके पदको पहुंचादें और उसीके

लिये जीवें उसीके लिये मरें। परन्तु क्या देशमें स्वतन्त्रताके लिये रगड़ा और तमातनी प्रचलित रखनेके योग्य लोग प्रस्तुत हैं? बंगाल ग्रन्थ रचयिताओं और वक्ताओंके लिये प्रसिद्ध है अतः उसके सुयोग्य पुत्र अपना जीवन इस कामके लिये समर्पण करदें। यह अपने पुस्तकों, संवादपत्रों और निबन्धोंसे और वक्तृताओंसे देशको बतला दें कि कैसे राजनैतिक स्वतन्त्रता मिल सकती है। यह अपने लिये केवल इतना धन मांगें जो उन्हें सादी जीवनयात्राके लिये आवश्यक हो और बने तो घरबारसे स्वतन्त्र रहें।

इसके बाद महाराष्ट्र देश है जिसमें नीतिज्ञता और प्रबन्धका तत्व उपस्थित है इसके पवित्र पुत्र देशके राजनैतिक प्रबन्धमें अपना जीवन समर्पण करदें हमारे सुप्रतिष्ठित मित्र (धन्य-धन्य) इस कामके लिये बहुत ही अनुकूल हैं किन्तु जिस गवर्नमेण्टने इन्हें इतने युगतक दुख दिया है आशा नहीं कि वह इन्हें छोड़दे क्योंकि इनपर उसे बहुत सन्देह होचुका है अतः उन्हें यही अच्छा है कि वह अपने घरको नमस्कार करलें और अपने आप निर्वासित होना स्वीकार करें और किसी अन्य देशमें रहकर दूसरे देशोंको

भारतके राजनैतिक सुधारपर झुकावें और इधरके कामका अच्छीतरह प्रबन्ध करनेको गोखले उपयुक्त हैं।

गोखले महाशयं मेरी समझमें बड़े लाटकी सभाके लिये अनुकूल नहीं हैं आपने सिद्ध कर दिया है कि निर्धन भारती भी लार्ड कर्जन सरिस उमरावका सामना कर सकते हैं और यही बहुत है अतः गोखले अपना सारा समय कांग्रेसके मन्त्रित्वके कामको दें एक केन्द्रिक कार्य्यालय बनायें...................... । कांग्रेसके प्रति अधिवेशनमें कमसे कम एक लाख मनुष्योंकी स्थिति होनी चाहिये ऐसे अधिवेशनोंका राजनैतिक लाभ बहुत बड़ा होता है। इसके अनन्तर सारे भारतका धर्म्म है कि बङ्गालका अनुकरण करे और समस्त अंग्रेजी मालका बायकाट (बहिष्कार) किया जाय। मेरी समझके राजपर प्रभाव डालनेके लिये यह बहुत ही उत्तम रीति है। यदि किसी कारण हमारा काम बिना विदेशी मालके न चले तो चीन, जापान, और इनके पीछे जर्मनी, फ्राँस, अमरीका हमारी आवश्यकताएं पूरी कर सकते हैं। एक और बात लाभप्रद है वह यह कि अङ्गरेजी कानून खूब विस्तारसे फैलाये जायँ जिससे भारतका जनपद जानले कि उसके स्वत्व

व अधिकार क्या हैं तब वह अपने स्वत्वोंकी प्राप्तिकी चेष्टा करेंगे। यदि सब बातें सरकारपर प्रभाव न डाल सकें, मुझे विश्वास नहीं कि ऐसा हो, तो हम और प्रभावशाली प्रयत्न कर सकते हैं।

प्रेसकी स्वतन्त्रता।

पोलीटिकेल लिबरटी अर्थात् राजनैतिक स्वतन्त्रता एक सामान्य और पूर्णव्यापी वाक्यांश है जो उन स्वत्वोंके समूहका द्योतक है जो किसी देशमें उसी देशके अधिवासियोंको अपने शासन (गवर्नमेण्ट) या शासक समुदायकी अपेक्षा प्राप्त हों। आजकल त्रुटिविहीन राज्य वह गिना जाता है जिसमें शासक व शासितका भेद केवल काम चलानेकी सुविधाके लिये हो और वास्तविक कोई भेदभाव न हो। केचित विद्वानोंका यह कथन है कि प्रत्येक निर्दोष (पूर्ण) राज्यमें तो प्रजा व राजा (देश व शासन) दोनों एक दूसरेके पर्याय होने चाहियें क्योंकि ऐसे देशोंमें राज्य प्रजाका स्थानापन्न (नायब या वकील) समझा जाता है। देशके साधारण जनपदको प्रणाली विशेष द्वारा शासनशक्ति निर्वाचित करने और बदल देनेके

अधिकार होते हैं। इस दशामें जो शासित हैं वही शासक हैं और जो शासक हैं वही शासित हैं। जिस सीमातक किसी देशमें प्रजाको गवर्नमेण्टके स्थापित करने या बदल देनेके अधिकार प्राप्त होते हैं, उसी सीमातक वह राजनीति सम्बन्धमें त्रुटिरहित (पूर्ण) देश कहाता है।

राजनैतिक स्वत्वोंकी सूचीमें विचारकी स्वतन्त्रता, लेखकी स्वतन्त्रता और वाणीकी स्वतन्त्रता अर्थात् मन, वाणी व लेखनी तीनोंकी स्वतन्त्रताको उच्चतम स्थान प्रदान होता है, इन तीनों स्वत्वोंको यदि एक वाक्यमें कहें तो मनकी स्वतन्त्रतासे अर्थात् खयालकी स्वतन्त्रतासे ही यह मतलब निकल सकता है। क्योंकि किसीके मनोभावोंकी स्वतन्त्रताका रोकना मानवी शक्तिसे बाहर है, अलवत्त देशके शासन-नियम इन भावोंके प्रकाशनको रोक सकते हैं। (अर्थात् मनमें यदि कोई कहे कि अमुक कर बुरा है तो कौन रोक सकता है, हां यही बात जो दूसरेसे कहे या छापकर प्रकाशित करे तो इसे राज रोक सकता है। अतः मनके ऊपर मनुष्यका आधिपत्य कुछ नहीं चलता)। जिस देशमें मनोभावोंके प्रकाशनमें राजनियम बाधक

हों और स्वतन्त्रताका प्रकाशित करना दण्डनीय माना गया हो वहांपर तो यह समझना चाहिये कि नियमानुसार अभी देशकी स्वतन्त्रताका आरम्भ ही नहीं हुआ। और ऐसे देशोंमें आपसे आप स्वभावतः मनकी उत्तेजना गुप्त रीतिसे उत्पन्न होकर वृद्ध होती रहती हैं। और उनका प्रकाश भी गुप्त ही होता है। स्वतन्त्रताके प्रेमी लगातार जोखम उठाते हैं और अपने आपको भयमें डालते हैं परन्तु अपने भावोंका प्रकाशन नाना भांतिके गुप्त और राजनियम विरुद्ध रीतियोंसे करते हैं। अनेकोंको सामयिक शासनके हाथोंसे देश निकाला मिलता है, बहुतोंको कारावास। कितने मौतका मुंह देखते हैं तथापि स्वतन्त्रताका प्रदीप अँधेरे संकुचित घरमें धरतीके भीतर ओंधे मुंह और गुम्हारियोंमें (घरके नीचे जो धरतीके गर्भमें घर होते हैं उन्हें गुम्हारिया कहते हैं, फारसी तहखाना) जलता ही रहता है और स्वतन्त्रताका साहित्य देशमें नाना भांतिसे फैलता ही रहता है।

राजनियम विरुद्ध साहित्य या तो गुप्त छापेखानोंमें छपकर गुप्त ही बँट जाता है अथवा स्वतन्त्र देशोंमें छपाकर गुप्त रीतिसे देशमें प्रस्तुत किया जाता

है। कोई कोई जीवनसे उपराम मनचले जान बूझकर खुलमखुला काम करते हैं और प्रसन्नतापूर्वक कालके गालमें समाते हैं।

ऐसे देशमें कभी राजप्रबन्ध दृढ़ नहीं होता, राजा व प्रजाके सम्बन्ध सदा खिचे हुए व कटु रहते हैं। जिस देशमें राज उसी देशके मतका अगुआ होता है वहां स्वतन्त्रताके भावोंका विकाश देरमें जड़ पकड़ता है। जिस समय योरोपके राजा रूमी पोपके आधीन अपने अपने देशके अग्रगण्य समझे जाते थे वह समय योरोपके इतिहासमें अन्धकारका समय गिना जाता है। इस समय मानो योरोपमें स्वतन्त्रताका बीज फूला फला न था।

ईसाकी १६वीं शताब्दिमें जरमनी देशके एक नवयुवक पादरी 'मारटिन लूथर' में प्रथम ही प्रथम स्वतन्त्रताकी मशाल जलाई। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि योरोपमें इसके पूर्व स्वतन्त्रताके भाव ही उत्पन्न न हुए थे या ऐसे मनुष्य नहीं हो चुके थे कि जिन्होंने स्वतन्त्रताके भावोंको प्रकाश करनेकी हिम्मत न की हो अथवा विचारोंकी स्वतन्त्रतापर बलिदान और आत्मोत्सर्गकी छाप न लगाई गई हो।

नहीं, नहीं ऐसा कदापि न समझना चाहिये, हमारी रायमें मनुष्य जातिके जीवन इतिहासमें कोई ऐसा समय नहीं बीता जब कि किसी न किसी ईश्वरके लालने स्वतन्त्रताका प्रदीप अपने छातीके रक्त तैलसे प्रज्वलित न किया हो। अतः जब हम यह कहते हैं कि मारटिन लूथरने, योरोपमें सबसे पहिले, धार्मिक स्वतन्त्रताकी मसाल जलाई तो इससे हमारा यह अभीष्ट है कि लूथर अपने प्रकाशसे एक विस्तरित मानवी परिकरको प्रकाशित करनेमें समर्थ हुआ। लूथरके हाथोंसे यह मसाल ऐसी प्रकाशित हुई कि फिर न बुझने पाई, यद्यपि एक संसार बहुत कालतक उसे बुझानेकी चेष्टामें बावला रहा।

अंगरेजी भाषाका एक प्रसिद्ध और गण्यमान्य कवि मिल्टन जब इटली नगरमें गया तो वहां उस समय धार्मिक स्वतन्त्रताके लिये एक बहुत बड़ा उपद्रव हो रहा था वह कारागारमें आकर उस व्यक्तिसे मिला कि जिसने योरोपमें सबसे पहिले इस सचाईको विज्ञप्त किया कि नक्षत्र वैनिस अर्थात शुक्र सूर्य्यकी चारों ओर घूमता है। यह व्यक्ति गलेलियो था जिसने पहिले पहिल दुर्बीन (दूरवीक्षण) बनाकर

योरोपको जहाज चलानेके योग्य बनाया। इस जहाज चलानेके ही प्रतापसे आज योरोपवाले सारी दुनिया पर अधिकार रखते हैं। उस समयके ईसाई धर्म्मनेताओंकी दृष्टिमें गलेलियो अधर्मी था क्योंकि उसका विचार पवित्र इञ्जीली शिक्षाके विरुद्ध था अतः उनको आवश्यक जान पड़ा कि ऐसे नास्तिकको कारागारमें बन्द किया जाय; जिससे उसके भाव उसकी ही छातीमें रहकर नष्ट हो जायँ और दूसरोंपर अपनी नास्तिकताका प्रभाव न डालें। अन्तमें गेलीलियोने अपने विश्व मस्तकके प्रकाशके प्रताप कारागारमें ही मरा। यद्यपि आज योरोपका महत्त्व और ईसाई जातियोंकी शक्तिकी अभ्रघटाएं उसीकी हड्डियोंपर खड़ी हैं।

अब मिलटनकी इटाली यात्राका हाल जो हम कह रहे थे लीजिये। मिलटनके लेखोंसे ऐसा ज्ञात होता है कि इन दिनों इङ्गलिस्तानकी भी लेखनीको पूरी पूरी कानूनी स्वतन्त्रता प्राप्त न थी अथवा यह स्वतन्त्रता भयग्रस्त थी। अतएव मिलटनने एक निबन्धमें समाचारपत्रों अर्थात् छापाखानों (प्रेस) की स्वतन्त्रताकी बाबत् पार्लीमेण्टका ध्यान आकर्षित किया है।

याद रखना चाहिये कि संवादपत्रोंकी स्वतन्त्रा-को रोकनेका एक अच्छा ढँग यह है कि राज एक विभाग स्थापित करता है जो पुस्तक अथवा समा-चारपत्र या निबन्ध देशमें छापने हों, पहिले इस विभागमें भेज दिये जायँ और उनकी आज्ञासे छपें, यदि वह आज्ञा न दें तो वह न छपें और यदि वह किसी अंशको काट दें तो उसे निकालकर शेष छापा जाय इत्यादि। यही नियम इस समय रूसमें है। ज्ञात होता है कि मिलटनके समय (यह ईसाकी सतरहवीं शताब्दिमें हुआ है) इङ्गलिस्तानमें भी एक ऐसा ही विभाग था अथवा जारी किया जाने वाला था इसीके विरुद्ध मिलटनने ध्वनि उठाई। वह कहता है:—"सम्मतियां और मनोभाव ऐसी वस्तु नहीं हैं जिनका किसीको ठेका दिया जा सके या जिनके व्यवसायपर कर लगाया जाय या जिन्हें राज नियमों या और तौल नापसे आंका जा सके। यह विचार बेहूदा है अर्थात् यह कुतर्ककी बात है कि लट्ठे या उसके बने कपड़ोंके थानोंकी भाँति विद्यापर भी छापें लगाई जायँ और अन्य विक्रेय पदार्थोंके समान उनके लिये भी व्यवसायिक राज-लैसंसकी

आवश्यकता हो। पुस्तकोंपर लैसंसका प्रतिबन्ध लगाना देशवासियोंपर कठोर अविश्वास, मूर्खता और दुराचारका कलंक लगाना है। इसका यह अर्थ होता है कि देशवासियोंकी मस्तिष्क सम्बन्धिनी दशा बहुत निर्बल और बुरी है, लैसंस देने वाले अफसरकी अनुमति बिना उनके पास किसी प्रकारका मानसिक भोज्य पहुंचना भयानक है। हम यह बहाना नहीं बना सकते कि हमको प्रीतिके मारे या रक्षाके लिये ऐसा करना उचित है। जब उपद्रवोंको रोकनेकी चेष्टा की जाती है तो वह और भी अधिक तीव्रतासे आक्रमण करती हैं क्योंकि उनके विरुद्ध द्वार बन्द नहीं हो सकते। प्रेसकी स्वतन्त्रतामें रुकावटें डालकर लोगोंको अपनी इच्छानुसार सोचने व काम करनेसे रोकनेकी चेष्टा उस बलिष्ठकी बल परीक्षाके समान है जो अपने बागके कपाट बन्द करके काकों (कव्वों को) रोकना चाहता था। बलात् संवादपत्रों व पुस्तकोंका प्रकाश न रोकनेसे उनकी महिमा बढ़ जाती है और उन्हें अधिक विख्याति प्राप्त होती है। लिखने व सोचने वालोंको दण्ड देनेसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और किसी रोके हुए लेखकी बाबत् साधारणतः लोगोंका यह भाव

हो जाता है कि अवश्य उसमें सच्चाईका कोई चिङ्गारा प्रस्तुत है और वह उन लोगोंका मुख दाहनेकी चेष्टा करता है जो इसके बुझानेके पीछे पड़े हैं।

इतना कहकर मिलटन गेलीलियोके साथ भेंट करनेका जिकर करता है और अन्तमें अत्यन्त उत्कृष्ट शब्दोंमें अपील करता है कि "जो लोग आपको यह सम्मति देते हैं कि पुस्तकोंके प्रकाशनमें प्रतिबन्ध लगाकर उनको दबाना चाहिये अर्थात् प्रेसकी स्वतन्त्रतामें कड़ी डालनी चाहिये वह आपको स्वयम् अपने ऊपर अत्याचार करनेकी सम्मति देते हैं। क्योंकि यह वह स्वतन्त्रता है जिसने हमारी राष्ट्रीय चातुरीको धायकी तरह पाला है, यह वह स्वतन्त्रता है जिससे तुमने अपनी प्रियतम और स्नेहमय पतियोंसे हमारे लिये खरीदा है, यह वह स्वतन्त्रता है जिसने अपने स्वर्गीय प्रभावसे हमारी आत्माको प्रकाशित किया है हमारी आशाओंको उच्च किया है और हमारे हौसले दूने किये हैं। अब आपके लिये यह सम्भव नहीं कि आप हमारे दिलोंमें सचाईके अनुकरणकी उत्तेजना और उत्तापको कम कर सकें और हमारी योग्यताके परिमाणको घटा सकें बिना

इसके कि आप संसारपर प्रकट करें कि अब हमारी सच्ची स्वतन्त्रताके जन्मदाता नहीं रहे अतः आपका स्वतन्त्रताके प्रति प्रेम भी घट गया। हम चाहे वैसे ही मूर्ख, जङ्गली, संकीर्ण हृदय और दास स्वभावके होजायँ, किन्तु इसके पूर्व कि हम ऐसे बन सकें यह आवश्यक होगा कि आप स्वयम् भी वैसे ही अन्यायी, अत्याचारी और दुराग्रही स्वतन्त्र जन बन जायँ जैसे आपके पूर्वज थे जिनसे आपने हमें छुड़ाया है। लेकिन आपके लिये वैसा बनना अब असम्भव है। यदि इससमय हमारे हृदय और मस्तक विस्तरित हैं और हमारे भाव सर्वोच्च और ठीकसे ठीक चीजोंकी ओर झुकते हैं, तो यह उन गुणोंका प्रतिफल है जो तुमने स्वयम् हमें सिखाये हैं। अतः हे मेरे प्यारे महाशयो, मुझे अपनी अन्तरात्माके प्रकाशके अनुसार जानने बोलने और बिना रोकटोक वादानुवाद करनेकी स्वतन्त्रा प्रदान कीजिये क्योंकि यह स्वतन्त्रा अन्य सब प्रकारकी स्वतन्त्रतासे उच्चतर है।"

इङ्गलिस्तानके एक और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ 'अर्ल आव चेटर फील्ड' ने एकबार हाउस आव लार्डसमें वक्तृता करते हुए रोमन इतिहासका संकेत करते और

रोमकी स्वतन्त्रताके पतनकी शोकजनक कथा कहते हुए कहा था :—"जब प्राचीन रोमके अधःपातके दिन आये तो स्वतन्त्रता बातुलापन समझा जाने लगा। कहा जाता है कि महाराज अगस्टसको अपनी राजधानी स्थापन कर लेनेके पीछे इस मुंहजोरीको रोकनेके लिये हमें यही विस्मय देना पड़ा जो रोमके निवासियोंकी स्टेज थियेटर अर्थात् नाटक-रंगभूमि और प्रेस यह दोनों स्वतन्त्रताके बाहरी पहरुआ हैं जब इनकी आंखोंमें धूल डाली गई या इनके पैरोंमें अलान बांधी गई तो जानो कि अधःपतनका पदार्पण होनेको है, जब चाहे आजाय।

हम नहीं कह सकते कि इंगलिस्तानके इन दो महान् विद्वानोंके उपर्युक्त लेख कहांतक हमारी दशापर प्रघटित होते हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आज कल जब समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताका प्रश्न चारों ओर गरम है और हमारे कतिपय ऐंगलो इण्डियन शुभचिन्तक समाचार-पत्र भारतकी स्वतन्त्रताके विरुद्ध हल्ला मचा रहे हैं और सरकारको यह सम्मति दे रहे हैं कि भारतके समाचारपत्रोंकी जांच पड़तालके लिये एक विशेष विभाग नियत हो, यह लेख व्यर्थ न होगा।

राजनैतिक स्वतन्त्रता ।

-राजनैतिक स्वतन्त्रता संसारके उन महान् उत्तम सम्भोगोंमें से है जिनकी प्राप्तिके लिये हर समय नाना देश और नाना राष्ट्रके पूजार्ह पुरुष अपने प्राण व धन बलिदान करते रहे हैं। व्यक्तिक स्वतन्त्रता स्वयम् एक ऐसी ईश्वरीय आशिष है जो कितने ही दामपर भी हो महँगी नहीं होती। लेकिन जिस देशमें राजनैतिक स्वतन्त्रता नहीं, वहां व्यक्तिक स्वतन्त्रताका विचार एक कल्पना मात्र है। इतिहासमें ऐसे उदाहरण तो मिलेंगे कि देशकी हैसियतसे किसी देशमें राजनैतिक स्वतन्त्रताके होते भी उस देशकी व्यक्तियोंको यथेष्ट व्यक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त न हो, लेकिन हमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं दीख पड़ता जहां सामष्टिक रूपसे किसी देशमें राजनैतिक स्वतन्त्रताके न होनेपर उस देशकी व्यक्तियोंको व्यक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

संसारमें ऐसा कौन प्राणी है जो स्वतन्त्रता नहीं चाहता और मनुष्योंमें कौन सा मनुष्य है जो समझ बूझकर स्वतन्त्र भावोंकी इच्छा नहीं रखता तथापि संसारमें न प्रत्येक प्राणीको स्वतन्त्रता ही प्राप्त है न प्रत्येकमें स्वतन्त्रताके भाव ही हैं। राजनैतिक स्वत-

न्त्रताके साथ साथ बहुत सीमा तक स्वतन्त्र भावनाका प्राप्त होना तो सम्भव है परन्तु उसी परिमाणमें स्वतन्त्र कर्मी होना असम्भव है। मनुष्योंके सामाजिक सम्बन्धके देखते स्वतन्त्र चलनका अधिकसे अधिक परिमाण जो किसी मनुष्यको मिल सकता है वह केवल इतना हो सकता है जितना उस विशेष समुदायके सार्वजनिक लाभके विपरीत न हो जिसके साथ उस मनुष्यको रहना सहना और दिन बिताना पड़ता है। मानों व्यक्तिक स्वतन्त्रताके परिमाणका आधार जातीय लाभ हानिपर है किन्तु जहां जातीय स्वतन्त्रताका अभाव है वहां व्यक्तिक स्वतन्त्रता कहां। इस दशामें यह कहना प्रत्यक्षके प्रतिकूल न होगा कि प्रत्येक देशमें उसके व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रताका आधार उसी देशकी सार्वजनिक राजनैतिक स्वतन्त्रतापर है। जो देश जातीय हैसियतसे स्वतन्त्र नहीं हैं उनमें साधारण व्यक्तिक स्वतन्त्रताका परिमाण उस सीमासे नहीं बढ़ सकता जिस सीमा तक कि वह वर्त्तमान राजनैतिक शक्तिके लिये भयानक न हो या उसे हानिप्रद न हो। जो देश और जो जाति एक अन्य राजनैतिक शक्तिके आधीन है उसकी व्यक्तियोंको राज-

नियमानुसार यह अनुमति नहीं हो सकती कि वह कोई ऐसी कृत्य करे जिससे उस शक्तिके राजनैतिक बलको क्षय हो। चाहे यह काम व्यक्तियोंके लिये वा मनुष्य समुदायोंके निमित्त अथवा देशके अर्थ व्यक्तिक रूपसे कैसा ही लाभप्रद और गुणकर क्यों न हो।

इसी भांति कोई बाहरी राजनैतिक शक्ति अपनी आधीन प्रजाको ऐसी स्वतन्त्र मति व गतिकी अनुमति नहीं दे सकती जो उसकी निज वृद्धि व बड़ाईका हानिकर व दोष जनक हो। यदि यह बात सत्य है तो हमारे पाठकगण अनुमान कर सकते हैं कि पराजित देशोंमें जहां कोई अन्य जाति शासन करती हो, देशवासियोंका राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना कैसा कठिन है तथापि इतिहासके पृष्ठोंको ऐसी दृष्टिसे पढ़ें जहां पराजित प्रजाने महान् उद्योग व झगड़ेके पश्चात् राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली हो।

भारतवासियोंके लिये जो इससमय अंग्रेजी जातिकी प्रजा हैं उन देशोंके इतिहासके वह भाग जिनमें इस झगड़ेका वर्णन है न केवल सुपाठ्य होंगे वरन् अत्यन्त आवश्यक हैं। इससे इन्हें यह ज्ञात होजायगा कि राजनैतिक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिये देश-

वासियोंमें किन किन गुणोंका पैदा होना आवश्यक है। फिर इन कठिनाइयोंको हम कैसे पार कर सकते हैं जो इनकी प्राप्तिके मार्गमें हैं। अतः पर वह कौनसी रीतियां हैं जिनके द्वारा हम राजनैतिक स्वतन्त्रताकी लपट झपटमें कृतकार्य्यता प्राप्त कर सकते हैं। हमारे देशमें इससमय विश्वास किया जाता है कि देशमें राजनैतिक आन्दोलन वेगपर है और इस विश्वासकी परिपुष्टिमें कांग्रेसवालोंकी धुंआधार वक्तृताएं, सभाओंमें श्रोताओंका उत्ताप, उमंग और उत्तेज, समाचारपत्रोंके बेधड़क लेख प्रमाणवत् उपस्थित किये जाते हैं। हम यह माननेको तय्यार हैं कि यह सब साखियां इस बातके प्रकाशके लिये निस्सन्देह सम्बन्धित विषय हैं कि गत पांच वर्षोंके देखते इससमय देशमें वास्तविक राजनैतिक चैतन्यताकी झलक दिखाई देती है, लेकिन इससे अधिक माननेको हम तय्यार नहीं। राजनैतिक जागृतिका काला न केवल अभी दूर ही है प्रत्युत सौमें ९९ देशवासीकी दृष्टिसे भी परे है।

इन धुआधार वक्तृताओं और पब्लिक उत्तेजों और समाचारपत्रोंके बेधड़क लेखोंमें सच्चे साहस और विचार गाम्भीर्य्य, राजनैतिक सिद्धान्तों और सचा-

इयोंसे जानकारी, राजनैतिक स्वतन्त्रताके लिये बलि होनेकी प्रस्तुती अन्य देशोंके इतिहासका परिज्ञान अपने देशकी स्थितिका पूरा परिचय और देश व राष्ट्रके लिये सच्चे और निस्स्वार्थ प्रेमके बीजकी खोज की जाय तो इतने कम मिलेंगे कि बिना दुर्बीनके खाली आंखोंसे देखनेवाले मनुष्य प्रायः यही कह उठेंगे कि 'हैं ही नहीं'।

हमारे राजनैतिक नेताओं सम्वादपत्र सम्पादकों या अन्य काम करनेवालोंमें अभी ९० प्रति सौ इस मजलतक नहीं पहुंचे कि वह इतनी स्वतन्त्रतासे अपने भावोंको प्रकाश कर सकें जितनी कि उन्हें राजनियमोंने दे रखी है। जब हम अपने भावोंका प्रकाश करना आरम्भ करते हैं न हमें केवल राजनियमोंका ही भय होता है वरन् सामयिक राजकर्म्मचारियोंका भी डर लगा रहता है। हम यह भी नहीं सोचते अपने भावोंके प्रकाशनमें क्या किसी वर्त्तमान राजनियमका विरोध करते हैं। न हम यही विचारते हैं कि क्या हमारे विचारोंसे सामयिक राजकर्म्मचारी अप्रसन्न होजायँगे। हमें भय तो यह रहता है कि ऐसा न हो कि कहीं स्थानिक शासकोंकी प्रसन्नता

और चापलूसीसे जो कल्पित लाभ किसी अवसरपर हमें पहुंच सकता है उससे हम वञ्चित रह जायँ। सम्पादकों, लेखकों व वक्ताओंको यही कारण बाध्य करता है कि बीच बीचमें भक्तिभावको वेगसे दुहराते जायँ और वक्ता बीच बीचमें ऐसे वाक्य विशेष लगाते जायँ कि जिससे उन्हें अपने भावोंसे नट जानेका अवसर बना रहे और योरोपियन अफसरोंको विश्वास दिला सकें कि उनका मतलब ऐसा नहीं था कि जिस पर किसी योरोपियनको आपत्ति होसके।

उक्त कथनसे हमारा अभिप्राय किसीकी कठोर आलोचना करनेका नहीं है किन्तु यह बतलाना है कि राजनैतिक पराधीनता ही स्वतन्त्र भावनाका कट्टर शत्रु है। राजनैतिक पराधीनता ही ऐसे महा-पापोंका प्रतिफल है और ऐसा कठोर दण्ड है कि यदि उसे समस्त बुराइयोंकी जन्मदात्री कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रथम तो राजनैतिक पराधीनता जब किसी देश या जातिके माथे पड़ती है वह जातीय अपराधोंका परिणाम होता है और पीछे वह सब बुराइयोंकी जड़ और सब भांतिकी व्यक्तिक और जातीय नीचताकी टेक होजाती है।

यह पराधीनता पहिले तो मानवी सद्गुणको समूल नष्ट कर देती है जिसे मानवी कोषमें स्पष्टभाषण और सत्य कहते हैं। यहांतक कि इस स्पष्टभाषण और सत्यवादके अभावसे भावों और अन्तःकरणकी शुद्धि भी विनष्ट हो जाती है। राजनैतिक पराधीनतामें पले हुए मनुष्यके रक्तमें नीचता, भीरुता, मिथ्यावाद, छल, कपटके बीज अच्छीतरह पलते पुसते हैं और धीरे धीरे यह बीज संक्रामक रोगकी भांति सारी धरतीमें फैल जाते हैं।

हमारे राजनैतिक स्वामी कहते हैं कि हम राजनैतिक स्वत्वोंके योग्य नहीं क्योंकि हममें छल कपट मिथ्यावाद, भीरुताका स्वभाव दृढ़ है किन्तु वास्तवमें राजनैतिक पराधीनतामें—सिवा इसके कि मनुष्य यह इरादा कर लेवे कि राजनैतिक पराधीन जीवनसे मृत्यु अच्छी है—यह दोष अनिवार्य्य और आवश्यम्भावी हैं। राजनैतिक पराधीनता और यह दोष कार्य्य कारण हैं। इन दोषोंसे राजनैतिक पराधीनता मिलती है और यह पराधीनता स्थिर रहती है। इन

दोषोंसे मुक्त होना मानो राजनैतिक पराधीनताकी अर्थी तय्यार करनी है या यों कहो कि राजनैतिक स्वतन्त्रताके दर्शन होते ही यह सब हवा होजाते हैं।

राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्तिके राजपथ पर पहिला पड़ाव यह है कि सामाजिक नेतागण राजनियमोंके भीतर साहस और सचाईसे सद्भावोंका प्रकाश करें। पहिला काम यह है कि लोग सार्वजनिक हानि लाभको निजू हान लाभपर बड़प्पन देने लगें। इसका यह अर्थ नहीं कि निजू हानि लाभकी परवाह ही न करें क्योंकि ऐसी भावना न्याय विरुद्ध है, मतलब यह है कि जहां सार्वजनिक व निजू (पब्लिक व प्राइवेट) हानि लाभ प्रतिद्वन्दतामें आजावें वहां पहिलेको ही प्रधानता दें। पहिला सोपान यह है कि पब्लिक हानि लाभके सामने प्राइवेट लाभके लिये चेष्टा न करें। दूसरे यह कि पब्लिककी हानिसे प्राइवेट लाभ होता हो या होना सम्भव हो तो उस लाभसे इनकार करदें। तीसरी अन्तिम बात यह है कि प्राइवेट हानि सहकर भी पब्लिकका लाभ होने दें।

हमारी स्थिति ।

(इसमेंसे कुछ स्थल छोड़ दिये गये हैं)

एङ्गलो इण्डियनका वाद है कि वह विजेता हैं और भारत पराजित । वह कहते हैं कि हमने खड्गसे भारतको जीता व खड्गके ही बलसे उस पर अधिकारी हैं । परन्तु इस इतिहास व इन घटनाओंने जब पदार्पण किया भारतका ढांचा ही दूसरा था । यहां बाजी मार लेजाना नीति व चतुराईका काम था तलवारका नहीं । और ऐसा ही हुआ कि अंग्रेजोंने जो जय प्राप्ति की सो अपने खड्ग बलसे नहीं की ।

मुग़लानी राज निर्बल होकर जर्जर हो गया था जड़में नितान्त घुन लग गया था । इस दशामें चतुरताके साथ किसीकी पीठ ठोक कर, किसीको लालच देकर किसीको छलसे यह विश्वास दिला देना था कि उनका लाभ इसीमें है कि वह प्रकाशमें एक बलिष्ठ शक्तिको अपना प्रधान मान लें और उसके सहारे शत्रुको नीचा दिखावें । यही काम ब्रीटनने किया । जब शत्रु तितर बितर हो गये और सामने आनेकी शक्ति न रही तो ब्रीटनने अपनी महती राजनैतिक

चालसे विचित्र पालिसीका अनुकरण किया, पुरानी प्रतिज्ञाओंपर पानी फेर दिया धीरे धीरे अपने सहायकोंके पर काट डाले और ऐसा आधीन किया कि उन्हें अब उड़नेका साहस ही न रहा। जब देश अधिगत हो गया तो प्रजासे भी उनको प्रसन्न करने वाली प्रतिज्ञाएं की गईं। यद्यपि आरम्भमें अन्याय अत्याचार भी बहुत हुआ परन्तु यदा कदा पीड़ितोंकी सुनाई भी होने लगी। प्रजा बहुत दिनोंके अत्याचारोंसे पीड़ित थी इस नाम मात्रके न्यायसे मोहित मोहित होगई। केचित् धार्मिक न्याय परायण अंग्रेज अधिकारियोंके न्याय व धर्म्म वर्तनसे शताब्दियोंकी दुखी प्रजाने इस न्याय, शान्ति सम्पन्न स्थितिको शुभ जाना।

इस सार्वभौम्य भलाईकी धुनमें अङ्गरेजी ध्वजाने न बालक राजाओं धरा धारियोंके स्वत्वोंका ध्यान किया न अनाथ, विधवाओंकी दीन दशापर दयाकी नीति (पालिसी) और सार्वजनिक लाभके नामसे सब स्वत्व मिटा दिये, यहाँ तक कि रञ्जीतकी भविष्यद्वाणी पूरी होगई। सारे महाद्वीपमें काश्मीरसे कुमारिका अन्तरीप तक और ब्रह्मासे बिलूचिस्तान

तक धरती रक्त वर्ण होई। और अब दावा यह कि हमने खड्गके बलसे लिया है और अपने लाभके लिये लिया है और अब तक खड्गके बलसे ही अधिकारमें किये हुए हैं। हमारा अधिकार है कि जितना लाभ उठा सकें उठायें, देशवासी हमारी प्रजा हैं। हमारा मन हो वैसा उनसे काम लें, यदि उनके साथ न्याय करें व स्वत्व उन्हें देवें तो हमारी उदारता है और इसमें हमारा भी लाभ है। इसके अतिरिक्त देशवासियोंका कोई स्वत्व नहीं है बराबरी व समताका दावा करना व्यर्थ पोच व कुतर्क है।

न हमें अपने देशके प्रबन्धमें यह स्वत्व है जो अङ्गरेजोंको अपने देश सम्बन्धमें हैं, न हमारा समस्त राज्य प्रबन्धमें हाथ है, भारतमें थोड़ेसे निर्द्वन्द अङ्गरेजोंका अधिकार है। देखते हैं कि राजनियम व्यवस्थापक सभामें अङ्गरेजोंकी सम्मतिकी अधिकता है। शासक समूहमें अङ्गरेजोंका ही बाहुल्य है, सेनामें शासन, शक्ति और अधिकार अङ्गरेजोंके हाथमें, फिर हम कैसे कह सकते हैं कि देशके प्रबन्धमें हमारा भी कुछ आवेश है। देशसे कर व बलि जो प्राप्त हो जितनी चाहें वह व्यय करें, देशकी शिक्षा भी हमारे हाथसे बाहर

है। परीक्षाकी फीस हमारे लड़के दें, वि० विद्यालय को दान हम और हमारे देशवासी देवें परन्तु प्रबन्ध इनका भी अङ्गरेजोंके ही हाथमें।

हम अङ्गरेजोंके फैलो सबजेक्ट तो हैं ही नहीं, प्रत्युत हमारा सम्बन्ध अपने महाराजासे भी नहीं है, जो एक मनमुखी महाराजाके साथ उसकी प्रजाको होता है। अच्छा होता जो महाराजा एडवर्ड सप्तम (या जार्ज) को हमारे ऊपर वही अधिकार होते जो अकबरको प्राप्त थे, तो उस दशामें हमारी दशा उत्तमतर होती। अब तो हमारे महाराजाको हमारे साथ कोई नेकी करनेका अधिकार ही नहीं, वह किसी भारतवासीको किसी प्रान्तका प्रधान शासक (गवर्नर) नहीं बना सकते, न वह भारतके लाभको ध्यानमें रख कर विलायती कपड़ेपर कर लगा सकते हैं, न वह विदेशी चीनीपर ही कर लगा सकते हैं कि जिससे बापुरे भारतवासी भी थोड़ी बहुत रोटी खा सकें। सच तो यह है कि हम नाम मात्रको लन्दनेशकी प्रजा हैं। नहीं तो साधारणसे साधारण मताधिकारी अङ्गरेजको तो हमारे ऊपर महाराजासे अधिक अधिकार हैं, वह चाहे तो अपने पार्लीमेण्टरी प्रतिनिधिके द्वारा हम

पर कर लगादेवे या किसी और तरह हमारे नसीबका फैसला करे ।

हम उन्हींके (अंग्रेजों) के लिये कमाते हैं, जीते हैं, उन्हींको अधिकार है जैसे चाहें हमें रखें। दयासे वर्तें चाहे निष्ठुरतासे । इस दशामें हमें अपना फैलो सिटीजन या फैलो सबजेक्ट कहना मानो हमें चिढ़ाना है । (फैलो सिटीजन=सहवासी और फैलो सबजेक्ट=राजभाई) जो साहब हमें ऐसा कहते हैं वह हमारे साथ निर्दयताका वर्त्ताव करते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि वह हमें वैसे ही फैलोसिटीजन कहते हैं जैसे अनेक अंग्रेज लोग अपने नौकरोंको सरदार, अपने घोड़ोंको टीपू और अपने कुत्तोंको प्रिंस कहकर पुकारते हैं । हमारे राजनैतिक भाव भरे हिन्दुस्तानी महाशय समझलें कि उनकी राजनैतिक स्थिति क्या है यही हमारी इच्छा है ।

महात्मा श्रीकृष्ण ।

संसारमें वह कौनसी जाति है जिसने वीर पूजा नहीं की, और विशेष ईश्वरके लालोंको परमात्माका पद नहीं प्रदान किया । यह मानवी स्वभावका गुण

है। जब मनुष्य किसीको उत्तम, धार्मिक, सदाचारी पाता है तो उसकी ओर झुकता है और जब उसकी महानताका अनुमान नहीं कर सकता तो उसे उसी महत्-यशका पद प्रदान करने लगता है। जबानी जमा खरच कितना ही किया जाय और नर पूजाको कितना ही पुकारकर कोसा क्यों न जाय तथापि कोई मनुष्य नर पूजाके दोषसे बरी नहीं हो सकता। एक सीमा तक मनुष्य पूजा मनुष्यका स्वभाव है और कोई शिक्षा इस बातको मनुष्यके स्वभावसे निकाल नहीं सकती। इसका प्रमाण उन जातियोंमें बहुत सा मिल सकता है जो अपनेको एक ईश्वर उपासक कहती हैं।

एक अंग्रेजी भाषाका प्रसिद्ध गद्य लेखक मि० कारलायलने साहित्यकी उत्तम रत्नमालामें वीरोपासनाके महीन भाव रूपी अनमोल नगीने इस हारमें जड़े हैं। यही लेखक अपनी 'हीरोवर्शिप' वीरोपासना नामक ग्रंथमें लिखता है कि "जगतके महान् पुरुष निस्सन्देह उस महदग्निकी चिङ्गारियां हैं कि जिसके प्रकाशसे संसार प्रकाशित है, जिसकी ऊष्मासे आकरज और उद्भिज और प्राणी स्थिर हैं, जिनका उत्ताप दयाका बादल

है, जिसकी शीत मनोंमें उमङ्ग, गति और आकर्षण उत्पन्न करनेवाली है।

जो भाव इस ईसाकी उन्नीसवीं शताब्दिके लेखकने अंग्रेजी भाषामें प्रकट किया है वह लाखों वर्ष पूर्व आर्य्यावर्त्तके ऋषियोंने आर्ष ग्रन्थोंमें अग्नि शब्दसे, जो वैदिक साहित्यमें जगह जगह अद्वैत परमात्माके लिये प्रयुक्त हुआ है, अनेक स्थानोंपर पूजार्ह ऋषियों व मुनियों व आप्त पुरुषों और महात्माओंके लिये भी प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी शब्द गाड अर्थात् ईश्वर है पर इसका बहुवचन गाड्स देवताओंके अर्थमें भी आता है। ईसाई ईसाको परमात्माका बेटा (सन आव गाड) मुसलमान मुहम्मदको 'नूर इलाही' (परमात्माका प्रकाश) बौद्ध लोग बुद्धको 'ईश्वर' कहकर पुकारते हैं-एवम् हिन्दू लोग श्रीराम व श्रीकृष्णको अवतार कहते हैं।

हिन्दुओंमें आप्तपुरुषों, ऋषियों, मुनियों, विद्वानोंका आदर सत्कार और पूजन वैदिक समयसे चला आता है। वेदमन्त्रोंमें भी इनके पूजाकी आज्ञा स्थान पर है। आर्य्योंके नित्य कर्मोंमें विद्वानोंकी पूजा भी एक परमावश्यक कर्त्तव्य है तथापि सारे वैदिक सा-

हित्यमें किसी मनुष्यको परमात्माका पद नहीं प्रदान किय गया।

पहिले पहिल आर्य्यावर्त्तमें बौद्धधर्म्मकी शिक्षासे लोगोंको परमात्माके आस्तित्वपर एक महानतम शङ्का हुई और इस पवित्र भूमिके निवासी एक परमात्मा सत् उपास्यदेवकी उच्चतम उपासनासे गिरकर मनुष्य-पूजाके अँधेरे गढ़ेमें उतर गये। सर्वसाधारण कुपढ़ोंमें यह उपासना ऐसी फैली है कि वैदिक धर्मोपदेष्टाओंने भी बौद्धधर्म्मके अनुकरणमें ही अपनी कुशल देखी। ब्राह्मणोंने बौद्धकी जगह राम व कृष्णको उपास्यदेव बना उनको अवतारोंका पद प्रदान कर लोगोंके समक्ष उपस्थित किया।

वेद पुकार पुकारकर कहता है कि परमेश्वर कभी देह धारण नहीं करते। योरोपियन विद्वान् भी इस विषयमें हमारे सहमत हैं। अवतारोंका भाव बौद्धधर्म्मके पीछे चला, बुद्धदेवके पूर्व भारतमें कोई अवतारों और मूर्त्तियोंकी उपासनाका विश्वासी न था।

महात्मा श्रीकृष्णदेव यद्यपि अवतार न थे मनुष्य ही थे परन्तु मनुष्योंकी सूचीमें आप उस सर्व श्रेष्ठ श्रेणीके प्रधान पुरुष थे कि संस्कृतज्ञोंने इन्हें उचित

ही रीतिसे मर्य्यादा-पुरुषोत्तमकी उपाधि प्रदान की है। वह अपने समयके गुरुदेव थे। (वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम्) योद्धा, वीर और विज्ञ थे। आपका जीवन हमारे लिये महान् शिक्षाओंसे भरा हुआ है हम आपकी बहुमूल्य शिक्षासे लाभ उठा सकते हैं यदि हम अपनेको उनके चरणोंकी रज समझकर उनकी शिक्षाओंसे लाभ उठाना चाहें। मेरी समझमें आजकल इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि हिन्दुओंकी शिक्षित समुदाय श्रीकृष्णजीके जीवनचरित्रपर विशेष ध्यान दे। क्योंकि योरोपका नास्तिक दर्शन अनेक भारतीय नवयुवकोंके मन डवांडोल कर रहा है। (यह धार्म्मिक व सामाजिक बन्धन छूटकर राजनीतिको ही सर्वस्व जानने लगे हैं।)

जो लोग आत्मोन्नतिके ध्यानमें लगे हैं जिन्हें धार्म्मिक दर्शनों और धर्म्मसे घृणा नहीं वेदान्त, वैराग, योग और संन्यासके फन्देमें फँस रहे हैं। इनकी दृष्टिमें संसार एक पानीका बुल्बुला है सांसारिक सुख, धन, सम्पत्ति सब घृणाके योग्य है। ऐहिक उन्नतिकी चिन्ता नहीं अपने जोममें एक दम ब्रह्म, परमयोगी बननेके अभिलाषी दीखते हैं। इनकी दृष्टिमें वह

लोग पागल हैं जो देशका ध्यान जातिकी उन्नतिकी ओर खींचकर लाना चाहते हैं।

आज कल यही दो समुदाय समस्त हिन्दू समाजमें हैं जिनमें ध्रुवोंका सा अन्तर है। (एक दुनियामें डूबे हुए धर्म्म, समाजको व्यर्थ कहनेवाला दूसरा वेदान्ती समुदाय संसार व सांसारिक उन्नति व भलाईको व्यर्थ कहने व माननेवाला जैसा ऊपरकी दो वाक्यावलियोंमें लालाजी दिखलाते हैं)।

परन्तु एक मध्यस्थ समुदाय छोटी सी और है जिसे उपर्युक्त समुदायें कुछ घृणासे देखती हैं। यह समुदाय चाहता है कि हिन्दू अपने प्राचीन शास्त्रोक्त धर्म्मपर दृढ़ रहें और उसीके अनुसार साँसारिक उन्नति करें और देशोन्नतिके मार्गपर चलें। यह समुदाय जहां नवीन वेदान्तियोंको अनुचित वैराग्यसे बचाना चाहता है वहां दूसरी ओर योरोपकी नास्तिक भौतिक फिलासफीसे भी रक्षा करना चाहता है। इस दशामें श्रीकृष्णचन्द्रजीका जीवनचरित्र उनकी फिलासफी और उनकी शिक्षा अत्यन्त लाभप्रद है। किन्तु शोक है कि लोग गीता व महाभारत पढ़ते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजीकी शिक्षा समझनेमें भूल करते हैं।

लोग वैराग, योग, वेदान्त इनसे सिद्ध करके संसारको लात मार, बाल बच्चोंको छोड़, बाल बखेर, भगवां वस्त्र पहिन, परिविराजकाचार्य्य (जो केवल परम उच्च कक्षाके विद्वान् योगेश्वरोंके ही भागमें आई है) बननेकी धुनमें लग जाते हैं। हा, यह लोग नहीं समझते कि जिस कृष्णने अर्जुनको लड़नेके लिये उद्यत किया, जिसने महाभारतके युद्धके अन्तपर युधिष्ठिरको उसकी निज इच्छाके प्रतिकूल राजभोग करने पर बाध्य किया, जिसने स्वयम् विवाह किया और सन्तान उत्पन्न की, और अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग संसारके कामोंमें लगाया, जिसने शत्रुओंसे बदला लिया, जिसने दुष्टों और अत्याचारियोंका नाश किया दीनों और सन्तापितोंकी सहायता की, जो स्वयम् संसारमें रहकर, सांसारिक धर्म्मका पालन करता हुआ उच्चतम कक्षाके अध्यात्मको प्राप्त हुआ, उसकी शिक्षासे हम कैसे यह परिणाम निकाल सकते हैं कि हमारे लिये यही श्रेयस्कर है कि हम अपने बालबच्चों व पितृ देवोंको त्यागकर जङ्गलमें चले जावें या अपना ऐहिक धर्म पालन किये विना योग साधनमें लग जावें।

आद्योपान्त श्रीकृष्णजीके जीवनका सार यही है कि मनुष्यको अत्यन्त सत्यता और दृढ़तासे सदाचार व धर्मपूर्वक अपने कर्त्तव्योंका पालन करना चाहिये चाहे यह कर्त्तव्य ऐहिक हों या पारमार्थिक। इसीसे वह निष्काम दशाको पहुंचेगा इसीसे उसे सच्चा ज्ञान मिलेगा इसीसे उसे परम मोक्ष प्राप्त होगी। कृष्णदेवने रणक्षेत्रमें अर्जुनके लिये उचित ही नहीं किन्तु परम-कर्त्तव्य ठहराया और प्रमाणित कर दिया कि वह अपने क्षात्रधर्म पालनमें और अपने राज-कर्त्तव्योंके पूरा करने और अपने कुनबेकी रक्षामें अपने हाथसे लाखों ईश्वरके सिरजे जीवोंका रक्तपात करे और अपने ही घरानेके वृद्धों, सम्बन्धियों व प्यारोंके सिर काटे। उसने स्वयम् अपने हाथसे अनेकबार समरमें हथियार किये और रक्त बहाया।

कृष्णके धर्म्मानुसार प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि जब तक वह ब्राह्मण पदका भागी न होजाय तब तक वह अपने शत्रुओंके साथ लड़ाई करे और यदि धर्म, कर्म, न्याय, सत्य, सन्तापितोंकी न्यायव्यवस्था, ईश्वरीय प्रजाकी रक्षाके लिये, अपने और अपने लोगोंके धन प्राणकी रक्षाके लिये, अत्याचारियों,

अन्यायियों, दुष्टों, सन्तापकों, वञ्चकों, पर अधिकार अपहारियोंके सिर तोड़नेके लिये ; यदि आवश्यकता हो तो अपनी जानपर खेलकर भी न चूके । इन कर्त्तव्योंके पालनमें झूठी दया और बेऔसर वैराग्यको काममें लावे तो संसारसे न्याय और व्यवस्था सर्वथा ही उठ जाय । ऐसे अवसरपर दया और वैराग्य तो केवल भीरुता और कायरपनका काम है । इस दशामें लोगोंका यह कहना कि जब करते धरते न बना तो वैराग्य ले लिया, अनुचित नहीं ।

ईसाई धर्म्मकी प्रशंसा कोई कोई इस आधारपर करते हैं—उसमें सिखाया गया है कि यदि कोई तेरे एक गालपर तमाचा मारे तो तू दूसरा उसके आगे करदे । लेकिन इनसे कोई पूछे कि इस शिक्षाका कभी अनुकरण भी हुआ है ? स्वयम् ईसाई कहांतक इस शिक्षापर चलते हैं ? प्रकृति इसके विरुद्ध शिक्षा देती है । यह बातें केवल कथनमात्र की हैं । कोई समर्थ मनुष्य इस कायरताको काममें नहीं ला सकता ।

जो लोग महात्मा कृष्णको दोष लगाते हैं और उनकी शिक्षापर उङ्गली दिखाते हैं, महाभारतके युद्धका और तज्जन्य मारधाड़का उन्हें दायी ठहराते हैं वह

कुछ सोचें तो सही, कि उनके ज्ञानदर्शनके अर्थ क्या हैं। यदि उनके घरमें कोई चोर, डाकू या बदमाश या व्यभिचारी आ घुसे तो क्या वह उसपर दया करेंगे। कोई समर्थवान दयावान उस चोर या डाकूको अपनी सम्पत्ति लेजानेकी अनुमति देगा अथवा अपनी जान, माल, मर्य्यादाकी रक्षाके लिये उसके इस अनुचित कृतको होने देगा और इस दुष्टको दण्ड देनेमें शङ्का करेगा? क्या धर्म्म यही अनुरोध करता था कि अर्जुन समरभूमिसे भाग जाता और सारी आशाओंपर पानी फेर देता जिनके सहारे युधिष्ठिरादि महाराजाओंने सेना एकत्र की थीं।

जो लोग कृष्णको अपराध लगाते हैं वह न जाने कैसे धर्म्मके सहायक और धर्म्मभावके प्रचारक कहा सकते हैं। दयाके इस झूठे भावने व वैराग्यके मिथ्या बर्तावने ही हिन्दूधर्म्मका नाश कर दिया और हिन्दू महत्वको मिट्टीमें मिला दिया, न दीनका छोड़ा न दुनियाका।

यदि हिन्दू अब भी इन भावोंके परिणामके पंजेसे नहीं निकलना चाहते जब कि वर्त्तमान समयकी शिक्षा

दीक्षा योरोपीय सभ्यता व उन्नतिका इतिहास और गीता भी यही सिखलाती है कि वह इन झूठे कार्य्येमें परिणत न होने योग्य भावोंको छोड़दें, तो हिन्दुओंकी उन्नतिका विचार केवल उपन्यास है। इस भावके अनुगामी न धर्म्मोन्नति कर सकते हैं न सांसारिक, क्योंकि आत्मिक जगत्में भी उसीकी परवाह है जिसकी भौतिक जगत्में।

लालाजीके कतिपय भाषण

शिक्षा।

नित्यके जीवनकी घटनाओंपर चलती दृष्टि डालनेसे ज्ञात हो सकता है कि जगत्में एक प्रकारकी नियमबद्ध व लगातार प्राकृतिक लपट झपट चल रही है। संसारमें चारोंओर यह खिचा-खिची हो रही है, सामना करनेका सिद्धान्त अपना काम कर रहा है। न केवल प्राणी प्रत्युत यदि खोजके साथ देखा जाय तो जड़ पदार्थ भी परस्पर दलादली व बलाबलीके साथ संग्राम कर रहे हैं। यह संग्राम प्राकृतिक अटल नियम है और सर्वथा मानना पड़ता है कि संसार एक वृहत्-रण-रङ्ग-भूमि या युद्धक्षेत्र है। हरेक पदार्थ दूसरेपर श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है। जिसतरह व्यक्तियां व्यक्तियोंपर वैसे ही जातियां जातियोंपर श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये हाथ पैर मार रही हैं। व्यक्तियोंकी भांति जातियोंका भी जीवन होता है, यदि व्यक्तियां कृतकार्य्य होंगी तो उन्हीं व्यक्तियोंकी जाति भी कृतकार्य्य होगी। यह कृतकार्य्यता योंही प्राप्त नहीं हो सकती, कृतकार्य्यता प्राप्तिके लिये एक

विशेष नियम नियत है और जबतक उस नियमको पालन न किया जाय कृतकार्य्यता प्राप्त नहीं होसकती। यह नियम बताता है कि व्यक्तियां हों या जातियां कृतकार्य्यता केवल उसीको मिलेगी जो उसके योग्य होगा। योग्यता कृतकार्य्यतामें पहिला प्रतिबन्ध है। रूस जापान युद्ध योग्यताके मूल्यको विस्तारके साथ प्रकाश करता है। जापानका बल रूसके सामने अत्यन्त न्यून है, तथापि जापान अपने बड़ेभारी शत्रुको हारपर हार दे रहा है। इसका कारण यह है कि जापान यदि सैनिक गणना या बलमें रूसके सामने कुछ अस्तित्व नहीं रखता किन्तु वह योग्यता (कर्मण्यता) रखता है और यह कर्मण्यता, समर्थ, (एफी शियेन्सी) कृतकार्य्यताका सहकारी अवयव है। जिसमें सामर्थ्य नहीं वह कृतकार्य्य नहीं। जो जाति समर्थवान नहीं वह कृतकार्य्य नहीं हो सकती।

आज जब कि जातियोंमें संग्राम मचा है (यही संग्राम प्राकृतिक) तो कृतकार्य्य वही जाति है जो अपना बचाव कर सके, परन्तु कृतकार्य्य तर वह जाति है जो अन्य जातियोंपर बड़प्पन ले जाय। एक जातिके नम्र बननेसे, याद रहे कि दूसरी जाति भी नम्र नहीं

है कि अब तू बिना हिचक रणमें जाकर योग दान कर सकता है और अपने मातृभूमिकी रक्षाको समर्थ है। जापानने देखा कि पोर्टआर्थरके अन्दर कई रूसी पोत लङ्गड़ डाले हैं इनका बन्दी करना व इनका मार्ग अवरुद्ध करना अभीष्ट है, परामर्श हुआ कि कुछ जापानी सिपाही जहाजों पर बैठकर उन्हें (निज पोतोंको) बन्दरके मुहाने पर ले जायँ और डुबो दें जिससे रूसी जहाज बाहर न निकलने पावें। इसके निमित्त पांच जापानी दरकार थे किन्तु पचासने निवेदनपत्र भेजे। (कइयोंने अपने रुधिरसे पत्र लिखे और ऐसे ही इसी युद्धमें किले तक जानेमें एक खाई बाधक थी तोपोंके जानेके लिये जीते जी सिपाहियोंने खाईमें कूद कर और पासकी शवोंको उसमें डालकर पाट दिया उसी परसे तोपोंके गाड़ीके पहिये निकल गये—राथे)। इन्हीं बातोंसे संसार कहने लगा कि मरी हुई एशियामें भी जीवन है।

अब प्रश्न होता है कि हम भारती क्यों इतने पतित और निर्बल हैं? इसका उत्तर एक शब्दमें यह है कि हम निर्बल हैं क्योंकि हममें शिक्षाकी कमी है। एक क्षणके लिये भारत और ग्रेटब्रीटनके शिक्षा

इस जातीय सामर्थ्यका भारतके इतिहासमें भी अभाव नहीं है। महारानी कुन्ती कृष्ण भगवानसे अपील करती हैं कि—"अर्जुनसे कह दो कि मैंने इसी दिनके लिये उसे दूध पिलाया था, अब समय है कि वह शत्रुओंसे बदला ले और दूधका बदला दे।"

महोबेका सरदार आल्हा जयचन्दके यहां ठहरा था, देशसे दूत आया कि चलो महोबेकी रक्षा करो। आल्हा ठिठका कि उसकी मां कहती है कि—"क्या तू सचमुच उसी क्षत्रीका पुत्र है जो तेरा पिता था या मुझसे कुछ भूल हुई।" आल्हा कांप उठा और रण भूमिमें जाकर वीरोचित मृत्यु द्वारा मुक्त पद प्राप्त किया। यों ही चित्तोड़के पारकोष्टित होनेके समय 'फत्ता' की माताने देखा कि बेटा अपनी बहूकी प्रीतिमें पड़ कर क्षात्र धर्म्मसे फिरा चाहता है तो वह स्वयम् बहूको साथ लेकर अस्वार हुई तब तो वीरको लज्जा आई और जाकर रणवेदी पर बलि हुआ। तो भी जापानियोंकी सामाजिक सामर्थ्यकी बराबरी नहीं होती। जापानी राज-नियमानुसार विधवाका इकलौता रणमें सम्मिलित नहीं हो सकता अतः माता कटार खा मरती है और अपने पुत्रको आपत्त हेली

बन जाती है। चतुर वह है जो स्वयं समयानुकूल बन जाय। इसी समताका परिणाम है कि प्रत्येक जाति अपने आपको समयानुकूल बनानेकी चेष्टाकरती है; (अप टुडेट होना इसीका नाम है—राधे) व दूसरी जातियोंसे लड़ती हैं। ईसाई गिरजोंमें नेकीका प्रचार करते हैं, बाइबिल सबकी सामिल धर्म्म पुस्तक है, पर ज्यों ही आवश्यकता होती है एक दूसरेसे रण रक्त खेलनेमें तनिक भी नहीं हिचकतीं। इस समरमें भी कर्म्म समर्थता प्रश्न है। जब बोरोंसे अङ्गरेजोंका युद्ध हुआ तो उन्होंने इनकी महत्ताको हिला दिया क्योंकि वह कर्म सामर्थ अपनेमें रखते थे। यह कर्म समर्थ इनमें एक देशी अर्थात् एक अंशी थी अतः उन्हें हारना पड़ा। स्वीटजरलैण्ड एक छोटासा देश है और स्व-स्थितिके अनुसार कुछ भी सामर्थ्य नहीं रखता, लेकिन उसकी पड़ोसिन जातें एक दूसरेका हिसक रखती हैं और एक जाति दूसरोंको अनुमति नहीं दे सकती कि वह अकेली स्वीटजरलैण्डको निगल जाय अतः स्वी० का अस्तित्व स्वतन्त्र व स्वात्मस्थ स्थिर है। जापान-का सामाजिक सामर्थ्य इससे कहीं अधिक है और यही उनकी विजयका प्रधान कारण है।

सम्बन्धी अङ्कोंको विचारिये तो आपको भयानक शिक्षाका दौर्बल्य प्रतीत हो जायगा। सरकारी रिपोर्टोंसे प्रकट होता है कि ग्रेट ब्रीटनकी जन संख्या ४ कोटि १४ लाख है जिनकी शिक्षामें ३३ करोड़ रुपया वार्षिक व्यय होता है। भारतमें २४ करोड़ (अब ३२ करोड़) जन संख्या है किन्तु केवल ४ करोड़ रुपया (अब अनुमान है कि पांच) खरच किया जाता है, इसमें प्राइमेरी व अपर प्राइमेरी व उच्च सब प्रकारका व्यय सम्मिलित है।

इस ४ करोड़में से भी भारत सरकार केवल ९७ लाख रुपया देती लेकिन वही सरकार अपनी चार करोड़ जन संख्यापर १९ करोड़ व्यय करती है। इङ्गलैण्डमें प्राइमेरी अर्थात् प्राथमिक शिक्षाका व्यय प्रति छात्र ४५) है, स्काटलैण्डमें प्रति छात्र ४३) व आयरलैण्डमें ३८) है। किन्तु भारतमें (पराधीन भारतमें) प्राथमिक शिक्षा गत प्रति छात्र ३) वार्षिक व्यय किया जाता है। यह शोकजनक दशा सारे भारतकी है जिसमें सब प्रान्त सम्मिलित हैं। प्रायः सुनते हैं कि उच्च शिक्षणमें अधिक व्यय होता है लेकिन यह भूल है। भारतके समस्त गवर्नमेण्ट कालेजोंमें २८ छात्रसे

अधिक व्यय नहीं किया जाता, वरन् इङ्गलिस्तान गत उच्च शिक्षामें २३ लाख रुपया है और जापानमें साढ़े नवीस लाख है। इनसे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि हम शिक्षामें सबसे पीछे हैं। यही शिक्षाकी न्यूनता हमारे अधोपतनकी दायी है। सारे सभ्य जगतमें केवल भारत है कि जहां प्राथमिक शिक्षापर बलि लगती है अर्थात् शुल्क या फीस है और कहीं इसका पटतर नहीं मिलता। समस्त सभ्य देशोंमें आप देखेंगे कि न केवल सरकार किन्तु प्रजा भी शिक्षामें परम-स्वार्थ लेती है। कारण यह है कि अन्य जातियां न केवल दूसरी जातियोंके साथ सामना करके सन्तुष्ट होती हैं, प्रत्युत प्रतिद्वन्द्वताके क्षेत्रमें आगे बढ़ जाना चाहती हैं। भारत दूसरोंकी समता न करे, दूसरोंसे आगे भी न बढ़ जाय परन्तु अपना अस्तित्व तो स्थिर रखे जो आजकल मुकाबिलेकी दौड़में केवल शिक्षोन्नतिसे ही सम्भव है।

प्रत्येक हिन्दूका धर्म है कि शिक्षाके प्रश्नको सर्व प्रधान समझे। चाहे सब काम पीछे रहें शिक्षाको पीछे न रहने दो। शिक्षाको प्रत्येक हिन्दू अपना धर्म माने, शिक्षाको ही महत्त्वका स्थान दिया जाय, इसीको

पवित्र और सर्व शिरोमणि प्रश्न मान लिया जाय। मैं अपील करता हूं कि इस प्रश्नके फलादेशको स्पष्ट करनेके लिये और इस उलझनको सुलझानेके लिये मिशनेरी पैदा हों। यदि भारतमें धन नहीं है तो न सही, दिल तो है दिल ही दिया जाय क्योंकि दिलके सामने रुपयेकी कुछ सत्ता नहीं। हमें अन्तःकरणवाले मिशनेरियोंकी आवश्यकता है जो जातिके अग्रगण्य हों। यह अपने कामको कालेज या स्कूलके परिकोटे तक ही परिमित न रखें, गांव गांव, नगर नगर फिरें प्रत्येक घरके प्रत्येक कोनेमें प्रत्येक कुटीरमें विद्याका प्रकाश फैलायें।

भारत व कर।

भारतवासी कर तो देते हैं परन्तु इस करको व्यय करनेके सम्बन्धमें इनकी कोई सम्मति नहीं रहती। इनका काम केवल कर देना मात्र है। संसारके समस्त सभ्य देशोंमें राज्यके सब कामोंमें कर देनेवालोंको अपना मत देनेका अधिकार होता है परन्तु भारतमें उल्टी गङ्गा बह रही है। कि कर तो दो पर व्यय करनेमें सम्मति न दो। भारतमें खेती करने वालों और

ओतोंपर भी कर है। आप लोगोंको एक कर शिक्षाकर भी देना पड़ता है, कर तो आप देते हैं परन्तु आपके बच्चोंको शिक्षा सेंत नहीं मिलती, नहीं अनिवार्य्य शिक्षाकी प्रथा है जैसा योरोपके समस्त देशोंमें पाया जाता है। इस प्रकारके और भी कई कर हैं जो सब भारतवासियोंको अपनी स्वल्प आयमें से देने पड़ते हैं। अन्धेर तो यह है कि इनके व्यक्तिक करोंपर ही सन्तोष नहीं किया जाता किन्तु सैनिक कर भी लगाया जाता है। इस सैनिक करमें वृद्धि वा उन्नतिकी कुछ ऐसी असाधारण योग्यता है कि प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता है, अतएव इस वर्ष इसका परिमाण ३३ मिलियन पौंड अर्थात् ३५ करोड़ रुपया तकको पहुंच गया है। भारतवासी सच्चे मनसे अंग्रेजी राजके शुभचिन्तक हैं व उर अन्तरसे रूससे घृणा करते हैं। भारतमें रूसके आनेका विचार भी इनके मनोंको बहुत दुखी करता है परन्तु मैं इतना अवश्य कहूंगा कि कई तरहपर भारतवासी अपने वर्त्तमान शासनसे असन्तुष्ट हैं और यह असन्तोष क्षण क्षण बढ़ रहा है और बढ़ता जायगा जबतक शासक पक्ष बुद्धिमत्ता और सन्देच्छाके साथ इसके विदूरित करनेका प्रबन्ध न करे।

इस प्रकारके असन्तोषकी वृद्धि भारत व इङ्गलैण्ड दोनोंके पक्षमें हानि ही कर रही है।

हे अङ्गरेज महिलाओ ! मैं आपके समक्ष बड़ी नम्रतासे प्रार्थी हूं कि आप इङ्गलैण्डके पुरुषोंके मनोंमें इस नैतिक दायित्वका भाव उत्पन्न करनेकी चेष्टा करें जो नैतिक दायित्वकी भारतका इनपर है। ऐसा करनेसे भारतमें कई विचार किये हुये सुधार स्वयम् सम्पूर्णताको पहुंचेंगे और निर्धनता पीड़ित भारतके माथेसे बहुतसा बोझ उतर जायगा।

स्वदेशी।

मेरे भाइयो, मुझे अनुमति हुई है कि मैं स्वदेशी आन्दोलनके सम्बन्धमें कुछ कहूं। स्वदेशी आन्दोलनके दो पक्ष हैं। एक राजनैतिक दूसरा सामाजिक। मेरे कथनका सम्बन्ध प्रथम अंशमें है मुझे आज यह दिखाना है कि स्वदेशी आन्दोलनका देशकी वर्तमान दशासे क्या सम्बन्ध है और स्वदेशी आन्दोलनके पक्षमें हमारा कर्तव्य क्या है।

आपको यह बात माननी पड़ेगी कि हम धनमें बहुत पीछे हैं। इससमय सरकारी गणनाके अनुसार

भारतवासियोंकी मासिक आय मध्यांशानुकूल २॥) प्रतिजन है। इसके समतामें इङ्गलैण्ड वासियोंकी आय देखिये वहां प्रति व्यक्तिके भागमें ४५ पौण्ड वार्षिक पड़ते हैं (अर्थात ६६०) रुपया वार्षिक या ५५) मासिक) कोई कोई महाशय हम लोगोंको गाड़ियोंपर सवार देखकर हमारे वस्त्र देखकर भारतके धनका अनुमान करते हैं किन्तु यह रीति अशुद्ध है और भारतवासियोंकी असली आर्थिक दशाका अनुमान उन गृहस्थियोंमें जाकर हो सकता है जहां दोनों समय खानेको भी नहीं मिलता, सब तरहसे देश दशाकी तुलना संकुचित होगई है। मजूर लोगोंकी मजूरी तो बढ़ गई है लेकिन साथ ही खानेके पदार्थोंके मूल्य भी अत्यन्त अधिक होगये हैं। आजसे कुछ वर्ष पूर्व यदि मजूरको ढाई आने नित्तीना मिलते थे तो वह उसी ढाई आनेमें सारे घरका पेट पालता था, लेकिन आज उसे छ आना भी खानेके पदार्थोंके महँगेपनकी तुलनामें अपर्य्याप्त हैं इससे समझा जा सकता है कि धनकी हैसियतसे भारती बहुत कमजोर हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि हमारी यह दशा क्यों हुई। इसका उत्तर यह है कि किसी देशकी आर्थिक

दशा उससमय तक ही अच्छी रह सकती है जबतक कि वह अपनी सारी आवश्यकताओंके सामान स्वयम् पैदा करे। जो देश अपनी आवश्यकताएं स्वयं उपार्जन नहीं करता उसकी आर्थिक दशा सदा भरोसेके अयोग्य होती है। पहिले हमारे देशका आधार केवल खेतीपर ही न था प्रत्युत यहांके निवासी अपने बनाए मालको बाहर भी भेजते थे फिर यदि हमारी यह दशा बदल गई तो अवश्य उसका कारण है क्योंकि पहिले हम औरोंकी आवश्यकताएं पैदा करते थे और आज अपनी आवश्यकता भी पैदा नहीं कर सकते अवश्य कोई नियम ऐसा पैदा होगया है जिसने हमारा सामाजिक ढांचा बदल दिया और जो शक्ति हममें बाहर माल भेजनेकी पहिले थी हड़प करली गई हमें यह भी जानना है कि हमें इसके बदलेमें क्या मिला। क्या कोई बतला सकता है कि हमें इसका विनमय क्या मिला। हमें बदलेमें कुछ नहीं मिला। जब हमें कुछ विनमय नहीं मिला तो हमारा देश अधिक कङ्गाल और अति दरिद्र होगया।

हमारी निर्धनताका एक और भी कारण है वह यह है कि हमारे देशसे प्रतिवर्ष बहुतसा रुपया बाहर

चला जाता है, हमें सरकारी अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि सन् १९०१ में १७ मिलियन (एक मिलियन दस लाखको कहते हैं) रुपया बाहर गया और अब यह संख्या और भी ऊपरको चढ़ गई उसके बदलेमें कुछ नहीं मिला, तो हमारी आर्थिक दशा चाहती है कि उसका कारण खोजें वह नियम क्यों बदल गया हमारे देशकी पैदा करनेकी शक्ति क्यों घट गई।

पहिले एक ग्राममें यदि २० २५ घर होते थे तो वह अलग अलग काम करते थे, सभी कृषक न होते थे उनका निर्वाह सर्वांश खेती पर निर्भर होता था। अनेक प्रकारकी जीवन आवश्यकताओंके उपार्जनको अनेक प्रकारकी शक्तियाँ थीं। किन्तु जब सबने अपना जीवन खेती पर ही निर्भर कर दिया तो इनकी शक्तियां सीमाबद्ध होकर एक वृत्तमें रह गईं और अपनी आवश्यकताएं प्रस्तुत न कर सके और आवश्यक पदार्थोंके निमित्त इन्हें अपना धन बाहर भेजना पड़ा जिसका फल यह हुआ कि हम दिनोंदिन निर्धन होते चले जाते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि हम क्या उपाय करें जिससे वह पदार्थ जो हम बाहरसे मँगाते हैं न मँगाना पड़े। बाहरसे चीजोंका मँगाना हम उस

दशामें बन्द कर सकते हैं जब अपनी आवश्यकताओं-को कम कर दें किन्तु इसकी आशा नहीं की जा सकती क्योंकि आवश्यकतायें प्रत्येक जनके साथ लगी हुई हैं, सुतराम हमें यह प्रबन्ध करना चाहिये कि जिससे हमारी आवश्यकतायें हमारे ही देशमें पूरी हो जायँ और हमारी धन्धेकी कमी भी मिट जाय। यह केवल उस दशामें हो सकता है जब हम अपने देशकी बनी चीजोंके व्यवहार पर जोर दें। इससे हमें जो लाभ होगा उसके व्याख्याकी आवश्यकता नहीं, इससे देशके व्यवसायको लाभ होगा तो देशकी आर्थिक दशा भी उन्नतिके ओर मुंह करेगी।

इसके पश्चात् प्रश्न चीजोंके उत्पादन व प्रस्तुतिका उठता है, अतः साथ ही साथ हम वस्तुओंके प्रस्तुतिका भी प्रबन्ध करें, परन्तु कैसे ? इस कामके निमित्त कुछ बुद्धिको आवश्यकता है, विशेष प्रकारकी बुद्धि व परिज्ञानकी जरूरत है। हमें उचित है कि हम चीजोंकी प्रस्तुतिका भी प्रबन्ध करें। हमें देशमें सार्वजनीन चातुरी दरकार है, हम सर्वसाधारणकी चातुर्य्यको समुन्नत करें। एक शिक्षितको अशिक्षितपर बड़प्पन प्राप्त है क्योंकि वह अपनी चतुरताका उत्तम

व्यवहार कर सकता है। मैं मानता हूं कि शिक्षित व्यक्त दुष्ट भी हो सकता है लेकिन यहां प्रश्न तो यह है कि शिक्षा मानवी बुद्धि वृद्धि कर सकती है। आप जानते हैं शिक्षित व अशिक्षित दोनोंके हाथ होते हैं लेकिन शिक्षित अशिक्षितकी अपेक्षा अपने हाथोंका उत्कृष्टतर उपयोग कर सकता है क्योंकि वह कुशल व शिक्षित मेधाका सदुपयोग जानता है।

सुशिक्षित मेधाका प्रश्न बड़ा गूढ़ है, इस बातमें हम अन्य शिक्षित देशोंसे कोसों पश्चात् पद हैं। जो प्रणालियां हममें कामकी पहिले थीं अब परिवर्तित होगईं और वह यन्त्र भी भोटे पड़ गये, परन्तु विदेशोंमें अब भी शिक्षित चातुर्य्यका बड़ा भाण्डार है और इतना बड़ा है कि यदि हम चाहें तो उससे बहुतसी संथा ले सकते हैं। पर, हा! जगत् इतना उदार नहीं है कि हमें अपने भाण्डारमेंसे विनमय विना कुछ ले लेने दे। निस्सन्देह, कहा जाता है कि जिसके पास अधिक धन होता है वह उदार होता है किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। अपने ही देशकी बात है, कुछ वर्षों पूर्व मैं सुना करता था कि 'भारतमें जिसमें जो गुण होता है वह उसे साथ ही लेकर मर जाता है।'

और जब योरोप आकर देखा तो वहां भी जातीय उदारताका मैदान कम विस्तीर्ण मिला ।

आप लोग जानते हैं कि लाखों रुपयेका रङ्ग जर्मनीसे आकर भारतमें बिकता है, पर भारत तो भारत वह अपने देशवासियोंको भी रंग बनाना नहीं सिखाते और व्यवसायिक रहस्य कहकर छिपाते हैं। जिन कौशलागारोंमें रंग बनता है वहांके वेतनभोजियोंतकको रंग बनाना नहीं आता। वहाँ केवल एक कोठरीमें रंग बनता है और इसका भेद केवल दो ही तीन मनुष्योंको परिज्ञात है। मैंने बेलजियममें एक रंग बनानेका कौशलागार देखनेकी इच्छा की किन्तु अकृत-कार्य्य रहा। मैनेजरने उत्तर दिया कि यहां जो बात आप जानना चाहते हैं वह कठिन है। मैंने यहां उदाहरणवत् इस बातको दिखलाया है कि संसार इतनी उदारताके लिये प्रस्तुत नहीं है, वह अपना भेद किसीको देना नहीं चाहता, लेकिन जिसे जीवन लालसा हो, जो जीनेका अभिलाषी हो वह इन्हें स्वयम् खोजे।

महाशयो, यदि व्यवसायिक रहस्य हमारे देशसे चले गये हैं तो वह लौटकर आ सकते हैं यदिचेत

हममें साहस और दृढ़ता हो। जिस तरह अमेरीकाके संयुक्त प्रान्तोंने जर्मनीसे, जर्मनीने अन्य देशोंसे वाणिज्य व व्यवसाय रहस्य लौटाकर लिये हैं, हम भी ले सकते हैं। यदि आपने स्वदेशी व्यापारकी चेष्टाकी है तो इस कामको साहससे पूरा करें। जब तक हम पूरी चेष्टा न करेंगे, कृतकार्य्यता न होगी। एक दो व्यक्तियोंके विदेशसे काम सीख आनेसे कुछ लाभ न होगा। सैकड़ों मनुष्योंको जाना उचित है, यदि एक कृतकार्य्य न होगा तो दूसरा होगा, दूसरा नहीं, तो तीसरा होगा।

हम देखते हैं कि एक अंग्रेजको आवश्यता पड़ती है कि योरिष्ट पहाड़की चोटी खोजे, यदि वह कृतकार्य्य नहीं होता तो दूसरा जाता है; कितने ही निराश मरजाते हैं, पर पीछा नहीं छोड़ते, चेष्टामें संलग्न ही रहते हैं; अन्ततः एक न एक उस चोटीपर चढ़कर ही रहता है।

जो विदेश जायँ तय्यार होकर जायँ नहीं तो कृतकार्य्यता कठिन है। स्वदेशी आन्दोलनका सबसे बड़ा अंश शिक्षित बुद्धिकी प्राप्ति है। हमें उचित है कि हम जिन्हें भेजें चुनकर जातीय पूंजीसे भेजें। जब

तक भारतवासी इस ओर चेष्टा न करेंगे कृतकार्य्य न होंगे।

धनिक सन्तान तो इस योग्य नहीं कि बाहर जा सके और काम सीख आये और निर्धनोंके जानेमें कठिनता यह है कि उनके पास धन नहीं। अतः धनिकोंका कर्त्तव्य है कि सम्मिलित पूंजीसे होनहार निर्धनोंको विदेश भेजें। यदि धनिक अपने बच्चोंको भेज सकते हैं तो बहुत ही साधु है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि जो वह अपनी सन्तानको नहीं भेज सकते निर्धनोंको भी सहायता न दें। उचित है कि नवयुवकोंको छात्रवृत्ति देकर बाहर भेजा जाय और वह नियमानुसार काम सीखकर लौटें। देशको लाभप्रद हों। दूसरी बात यह है कि अनेक लोक जानना चाहते हैं कि जो शिक्षा पाकर लौटेंगे वह क्या करेंगे, प्रायः लड़के मुझसे यही प्रश्न किया करते हैं। मैं उन्हें उत्तर देता हूं कि यदि तुम यह न जान सको कि हम भारतमें लौट आकर क्या करेंगे तो तुम लौटकर न न आना।

और एक बात जो भारतकी उन्नतिमें बाधक है वह यह है कि प्रत्येक शरीर जो बाहरसे शिक्षा

पाकर आता है यह समझता है कि उसका मूल्य बढ़ गया और जब तक पूरा मूल्य न मिले वह अपनी मेहनत बेचना नहीं चाहता, यह लोग बहुत सा धन एकत्र कर लेना चाहते हैं। यह उनके सौभाग्यकी बात है पर ऐसा न हो कि छलांग भरनेमें अपनी ही टांग तोड़ लें। अतः नवयुवकोंको उचित है कि समझ रखें कि उन्हें लौटकर अपने देशके अनुकूल काम करना होगा।

महाशयो, यह तो हुई देशकी आवश्यकता प्रस्तुतिकी बात, अब यह बतलाना है कि विदेशी हमसे बलमें अधिक क्यों हैं। इसका कारण यह है कि वह अनेकोंका धन एकत्र करके हमसे सामना करते हैं और जीत जाते हैं। हम भी यही करें। सम्मिलित पूंजीकी कम्पनियाँ खोलें। इन दिनों वही जाति जीतती है जो सम्मिलित पूंजीसे काम करती है। इन दिनों सम्मिलित पूंजीका सिद्धान्त उन्नतिपर है परन्तु साथ ही बदनामीका भी सन्देह है, इसका कारण हमारी तन्द्रा है। जब तक हमारा निजू लाभ नहीं होता हम काममें मन नहीं लगाते। हम समझते हैं कि किसी सम्मिलित पूंजीकी व्यवसाय समितिका एक भाग ले

लिया और होगया। हमको चाहिये कि हम जब सम्मिलित पूंजीका काम प्रचलित करें तो यह भी देखें कि उसमें अकृतकार्य्यता न हो। हमें इस सम्मिलित-धन-सञ्चालित कामसे बुद्धिमानीके साथ लाभ उठाना उचित है। जो धन धरतीमें गड़ा है निकालें। जो धन स्त्रियोंके शरीरपर बन्द है जिससे स्त्रियां स्वरूपाके बदले कुरूपा दीखती हैं, उसे सम्मिलित पूंजीमें लगावें और ध्यान रखें कि धनका कुप्रयोग न हो, क्योंकि यही बड़ा कारण अकृतकार्य्यताका है।

अब तीसरी बात विभाजन अर्थात् देशके बने पदार्थोंका देशमें विस्तारसे फैलाना है उसके सम्बन्धमें थोड़ा सा कहता हूं। यह काम इतना कठिन नहीं दीखता, यह हमारे हाथोंका काम है।

इस विषयमें एक प्रश्न उत्पन्न होता है उसका उत्तर यह है कि जो चीजें हमने बनाई हैं वह उत्तम हैं तो किसी सिपारिशकी मुखापेक्षा नहीं, लेकिन आदिमें यदि किसी प्रकारकी त्रुटि रह जाय तो फिर सबका कर्त्तव्य है कि उसके फैलानेमें सहायता दें। पहिले लोग कहते थे भारत कोई विचित्र सृष्टि नहीं है. जैसे अन्य देशवाले मनुष्य हैं हम भी हैं, जो दूसरे

देशवाले करते हैं हमें भी करना चाहिये। संयुक्तदेश अमरीकाको लो वहां जन संख्या कम है अतः वहां मजूरी महंगी है, इसके सिवा वहां कच्ची निपज और आकरें भी नहीं मिलतीं। इङ्गलिस्तानमें जन संख्या अधिक है इस लिये उसी अंश सम्बन्धमें मजूरी सस्ती है। जब यह प्रश्न उठा कि इङ्गलैण्डका माल सस्ता पड़नेके कारण अमरीकामें सस्ता बिकता है तो अमरीका वालोंने बाहरी मालपर ४०) सैकड़ा कर लगा दिया अर्थात् जितनेका माल था उससे अधिक घाट पर ही ले लिया; इसका परिणाम यह हुआ कि अमरीकाका कपड़ा ॥।) गज था और विदेशी कपड़ा ॥=) गज पड़ता था अब मर्य्यादित करने, जो ३०, ४० कभी कभी ५० प्रति सैकड़ा तक भी होता था, ॥=) गज वाले कपड़ेको इतना महङ्गा कर दिया कि वह एक रुपया गजमें भी पड़ता न खाता, सुतराम् आजकल अमरीकामें बाहरसे चीजें नहीं आतीं।

अमरीका सब देशोंमें अधिकतम शिक्षित सभ्य देश है, यदि वह ऐसा करता है तो उसमें अवश्य कोई न कोई गूढ़ रहस्य है। जर्मनी भी यही करता है, केनेडा भी यही करता है, और हमारे दयालु,

हमारे शासक भी यही करते हैं। अंग्रेज बड़े मालदार हैं वह जो चाहें कर सकते हैं लेकिन प्रश्न यह है कि हम क्या कर सकते हैं, हमारे पास तो कानी कौड़ी भी नहीं। परन्तु, महाशयो, यदि हम अङ्गरेजोंको किसी बात पर दबा नहीं सकते हैं तो कमसे कम हम इतना तो कर सकते हैं कि अपनी चीजोंको आप ही बर्तें चाहे हमें इसमें हानि ही क्यों न उठानी पड़े। मैं समझता हूं कि यह नैतिक पार्श्व है। जब हमें पहाड़पर चढ़ना है तो हम कष्ट सहन करें और इस चढ़ाईपर चढ़नेसे न शंकें, परन्तु यह तभी हो सकता है जब हम इस प्रकारका स्वभाव बनावें। मनुष्य बहुत अंशोंमें स्वभावका दास है, बच्चेका जैसा स्वभाव डालो पड़ सकता है, हम लोग भी जातीयताके लेखे बाल्यावस्थामें ही हैं।

महाशयो, जिससे आपको यह आशा नहीं कि वह गाढ़ेके कुरते पहने या अपने देशके कपड़ेके प्रेमसे चार आनेकी जगह साढ़े चार आने खर्च कर सके उससे कभी देशभक्त बननेकी आशा आप न रक्खें। स्वदेशी आन्दोलन जातीय पाठशाला है और हम

सब बच्चे हैं और हम सबको इस जातीय लाभकी पाठशालामें बच्चोंकी भांति पलना होगा।

प्यारे मित्रो इस प्रश्नका एक अङ्ग और है जो मैं कह नहीं सकता क्योंकि अतिकाल होगया है। स्वदेशी आन्दोलनमें एक बड़ा भारी सौभाग्य यह होगा कि वह देशकी विभिन्न उपजातियोंको एक ही मञ्चपर लाकर खड़ा कर देगा। हिन्दू मुसलमानोंमें आजकल बड़ा भारी दोष यह है कि जब कोई काम होता है तो वह राजकर्मचारियोंसे एक दूसरेकी चुगली (पैसुन्य) करते हैं। स्वदेशी ऐसा काम है जिसमें किसीको पिसुनताकी (चुगलखोरी) जरूरत नहीं। हम बाजारमें जाते हैं तो यह नहीं पूछते कि यह कपड़ा हिन्दू जुलाहेके हाथका बना है, या मुसलमान जुलाहेके हाथका। वणिकोंका भी यही हाल है, वहाँ हिन्दू मुसलमानको कोई नहीं पूछता जो सौदा होता है पारस्परिक विश्वास पर होता है। बम्बईके हिन्दू-मुसलमानोंके मेलका कारण उनका व्यवसायी होना है, इनमें एक दूसरेका परस्पर विश्वास है। वह नौकरीके लिये एक दूसरेसे लड़ते झगड़ते नहीं।

सार यह कि स्वदेशी आन्दोलनसे हिन्दू मुसलमान दोनोंका लाभ है हिन्दू हिन्दुओंके शुभचिन्तक बने रहें मुसलमान मुसलमानोंके, लेकिन हिन्दू मुसलमान दोनों मिलकर भारतके शुभचिन्तक बनें। इससे दोनोंकी निर्बलता दूर हो जायगी और दोनों मिल कर अन्य जातियोंका सामना कर सकेंगे। वह समय आयेगा कि तीसरा कोई इनका सामना न कर सकेगा।

मैं आशा करता हूं कि आप इन बातोंको ध्यानसे सोचेंगे। स्वदेशीमें कोई चिन्ताकी बात नहीं। स्वदेशका अर्थ है अपना देश। उचित है कि हम इसकी माताके समान प्रतिष्ठा करें जिसने हमें अपना दूध पिलाया। इसमें कोई भयका स्थल नहीं है। यदि आप अपने मातृभूमिकी सेवा करते हैं तो कोई दोष नहीं करते, हमें अवश्य स्वदेशसेवा करनी चाहिये क्योंकि इसीमें हमारे देशकी मुक्ति है। इसके द्वारा हमें उपवासोंसे छुटकारा मिल सकता है, यह (स्वदेशी) हमारे लिये मुक्ति है। हमारा कर्तव्य है कि हम इसे प्यार करें। मनुष्यको निराश न होना चाहिये।

हे परमात्मन् आप हमें इतनी शक्ति प्रदान करें कि जिस कामको हमने आरम्भ किया है उसपर दृढ़ रहें।

दुर्भिक्षमें हमारा कर्त्तव्य।

लालाजीने इस विषये वादानुवाद करते हुए अपनी वक्तृतामें कहाः—

उड़ीसा बङ्गाल प्रान्तका एक भाग है उसकी दशा बहुत बुरी है। दुर्भिक्ष पीड़ितोंके चित्र इस समय मेरे पास नहीं हैं पर मैंने देखे हैं, उनकी दशा उससे अच्छी नहीं है जो सन् १८९७ व १९०० में उन अनाथोंकी थी जो पञ्जाबमें लाये गये थे। प्रत्येकका अस्थि पिञ्जर दिखलाई देता है। गत बर्षा लाभके बदले हानिप्रद समझी जाती है मध्यप्रान्तकी दशाका भी न कहना ही भला, संयुक्तप्रान्तकी भी स्थिति अच्छी नहीं। मैंने झांसीमें एक नवयुवक ग्रेजुएटको जांचके लिये भेजा तो उसकी रिपोर्टसे ज्ञात हुआ कि १५ प्रतिसौ निवासी काम करनेके योग्य नहीं हैं। इनके अतिरिक्त इतनी ही संख्या उनकी है जिन्हें एक समय भी पेट भर अन्य नहीं मिलता। सरकारी काम जो खुले हैं उनमें मजूरी इतनी मिलती है कि पेटभर खानेको पर्य्याप्त नहीं होती। एक लड़केने तीसरे पहर दो बजे तक काम करनेपर आध आना

भी नहीं कमाया अतः इस सहायताके कामसे मजूरी करनेवालेका निर्वाह नहीं हो सकता।

सरकार कभी कभी विना काम लिये भी सहायता देती है पर वह ऐसी और इतनी नहीं होती कि जिससे मुसीबतका यथेष्ट उपचार हो सके। सहायक कामों व विना काम सहायता प्रदानके अतिरिक्त कर्मचारी सहायतार्थ प्राइवेट फण्ड खोलनेका भी आन्दोलन करते हैं, अतएव संयुक्तप्रान्तके लफटण्ट गवर्नरने लखनऊ जाकर एक सहायताफण्ड खोला भी है। इस फण्डकी स्थापना प्रकट करती है कि जब तक लोग स्वयम् सहायता न करें सहायताकी आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती। यहां भी (पञ्जाबमें) हिन्दू सभाकी ओरसे सहायताका कार्य्य आरम्भ किया गया है। और राजकी सहायताकी भी तजवीज हो रही है परन्तु हिन्दू अच्छी तरह जानते हैं कि इस तरह सहायता प्रत्येक मनुष्य तक नहीं पहुंच सकती और यह सहायता हरेक अधिकारी प्राप्त नहीं कर सकता। कई लोग सहायता लेनेमें लज्जा करते हैं और आप सकुटुम्ब उपवास करना स्वीकार करते हैं।

कांगड़ा जिलेमें भूकम्पके समय अनुभव हो चुका है कि कई हिन्दू राज-सहायता स्वीकार नहीं करते थे, यदि उस समय आर्य्यसमाजकी सहायता न पहुंचती तो वह सरकारी सहायता लेनेसे मरना अच्छा समझते। यदि औरोंकी बाबत नहीं तो हिन्दुओंकी बाबत ही यह ख्याल कर लेना चाहिये कि इनमें एक समुदाय ऐसा है जो सरकारी सहायता स्वीकार नहीं करता या उन तक सहायता नहीं पहुंचती या पूरी तरह नहीं पहुंचती। इससे अभिप्राय आलोचना करना या दोष प्रदर्शन नहीं है प्रत्युत अभीष्ट यह है कि जो कमी रह जाती है उसके पूरा करनेका प्रयत्न किया जाय। सरकारी सहायतामें धर्म या मतका भेदभाव नहीं होता और न होना चाहिये परन्तु ऐसे समय जब कि आपदा सिरपर आरही हो सहधर्म-भावसे ही ऐसे प्रबन्ध व ऐसे सामान प्रस्तुत करें कि स्त्रियों, विधवाओं और अनाथ बालकोंको सहाय्य पहुंच सके और वह जीवन स्थिर रखनेके लिये दूसरे धर्मावलम्बियोंकी शरण लेनेको वाध्य न हों। ऐसे समयमें चुप रहना उचित नहीं जो कुछ

भी हो इससे उपरामता न होनी चाहिये । १८९० के अकालमें हिन्दुओंने चेष्टाकी और वह एक सीमा तक कृतकार्य्य भी हुए । हमारे पास ऐसे निमित्त नहीं हैं कि हम प्रत्येक हिन्दू तक सहायता पहुंचानेका वाद कर सकें, न इतना धन है न इतने अधिक कार्य्यवाहक हैं, तथापि साहस पूर्वक अकाल पीड़ितोंकी सहायता करना आवश्यक है ।

सन् १८९७ में राजपूतानेसे दुःख और सहायताकी ध्वनि उठी और सहायता द्वारा २५०-३०० अनाथ बचाये गये । अस्थाई अनाथाश्रम बनाये गए, कई भ्राताओंने पीड़ित स्थानोंमें जाकर अनाथ एकत्र किये, कइयोंने मार्गमें धन एकत्र किया, इन्हीं दिनोंमें भिवानी व हिसारमें स्थिर अनाथालय स्थापित हुए अनेक स्थानोंपर जो सामयिक अनाथालय खुले थे बन्द किये गये । अहमदाबाद व बम्बईमें भी अनाथालय स्थापित हुए ।

१९०० में फिर अकाल पड़ा इस अकालमें जवानों व बूढ़ोंने बड़े साहस व उत्साहसे काम किया और अनुमान् २००० अनाथ मृत्युके मुखसे बचे ।

इन समर्थोंके बचाये हुये अनाथ अब अच्छे कामों पर लगे हैं और समाजके लाभप्रद व्यक्ति बन रहे हैं। इसके सिवा प्रान्तान्तरके हिन्दू अपने आपको एक ही सम्बन्ध, एक ही रुधिर व एक ही पूर्व पुरुषोंकी सन्तति समझने लगे हैं। अनाथोंकी रक्षा तुच्छ बात न थी; परन्तु इससे यह भी बड़ा लाभ हुआ कि हिन्दुओंमें एकताका बन्धन हो गया। ऐसे कामोंकी बड़ी आवश्यकता है जिनसे हिन्दुओंमें ऐक्यभाव उत्पन्न हो। एक समुदाय विशेष दुर्दशा ग्रस्तोंमेंसे मजूरी करनेके योग्य होती है, लेकिन कई दशामें व और कई जिलोंमें मजूरी करने योग्य पुरुष मजूरी करने और पेट पालने निकल जाते हैं केवल स्त्रियां पीछे रह जाती हैं। इस दशामें पुरुषका घरसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, माताको पुत्रका, पत्नीको पतिका पता नहीं रहता घराने तितर बितर हो जाते हैं और प्रायः उन्हें फिर एकत्र होना असम्भव हो जाता है।

शिमलामें एक लड़कीका एक अभियोग हुआ था इस लड़कीको एक ईसाइनने पाला था पर यह न जानती थी कि उसका विवाह हो चुका है। पतिने

न्यायालयमें कहा कि वह मेरी स्त्री है पर इसे उसका कोई पता न था। वह लड़की इसे न मिली क्योंकि ईसाइनने उसे इधर उधर कर दिया था। इससे प्रकट होता है कि ऐसे कुसमयमें क्या दशा होती है।"

आगे चलकर आप राजपूतानेका हाल कहते हैं:- "लोग अपने पशु रेलवे लाइनके पास लाकर चमड़ेके भाव बेच रहे हैं।" "हमारी जातीय लज्जाका अनुरोध होना चाहिये कि जहाँ कहीं विधवा निराश्रय स्त्रियां हों उनकी सहायता करें। हिन्दूधर्म्ममें स्त्रियोंको बड़ा पद प्रदान किया गया है, इन्हें देवी कहा जाता है, यह सचमुच देवियां हैं क्योंकि अत्याचारके समय इन्होंने प्राण देना व जलना स्वीकार किया था, परन्तु सतीत्व नहीं हाथसे जाने दिया। हमारा कर्त्तव्य है कि किसी स्त्री या लड़कीको पराये हाथमें न जाने दें। पिछले अकालोंमें, लड़कियोंकी एक बड़ी संख्या 'रमाबाई इसाइनके' अनाथालयमें पहुंचाई गई। हमारा कर्तव्य है कि अनाथों, बेवश स्त्रियों, विधवाओं, लड़कियों मातापिता-विहीन बालकोंकी रक्षा करें। यदि हम ऐसा न करें तो मानो हम उस

पूंजीको व्यर्थ फेंकते हैं जिससे जाति बनती है।

बम्बईमें कुछ मित्रोंपर मैंने अपना भाव प्रकट किया। एक सेठसाहब मुझे अपने घर ले गये और चांदीका फ्रेम मुझे भेंट करना चाहा, मैंने उनसे कहा कि यदि आप मेरा मान करना चाहते हैं तो इस काममें (अकाल फण्डमें) कुछ दान दें, इन्होंने उसी समय दो हजार देना मंजूर किया। एक अन्य सेठने एक हजार दान दिया। नाटक कम्पनियोंने भी अपनी आय दी और इसतरह सब ४०००) रुपया एकत्र होगया।

बम्बईमें मारवाड़ी स्वदेशी मण्डलीने मुझे 'स्वदेशी' पर व्याख्यान देनेको बुलाया, मैंने व्याख्यानमें इस बातपर ध्यान दिलाया। इसपर वादा किया गया कि एक उचित रकम संग्रह करके भेजी जायगी।

कलकत्तेमें भी कुछ काम किया गया। मारवाड़ियोंकी सभामें एक सेठने ११००) दिया और सब धन संख्या ६०००) को पहुंच गई। कानपूरमें दो हजार हुए।"

लालाजीके उक्त कथनसे ज्ञात होता है कि सच्चे काम करनेवालेके लिये भारतमें निराश होनेका कोई स्थल नहीं। साथ ही हम जान सकते हैं कि लालाजीके प्रति किसतरह देश हार्दिक प्रीति रखता है।

दीनोंकी सहायता।

लालाजीके कतिपय भाव भरे शब्द। "शोक कि हिन्दुओंके बच्चे रोटीके लिये धर्म्म बदलें। एक ओर आप छूत छातके मानने माननेवाले हैं, कि कहीं कच्ची पक्कीसे न छू जाय। दूसरे आपपर जाति-पांतिका बन्धन है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने आपको स्वर्गसे सीधा उतरा हुआ समझते हैं, और निम्न श्रेणीके वर्गोंको पातालसे निकला हुआ मानते हैं। राजपूतानेमें मैंने सहायताके कामपर एक राजपूत लड़केको मजूरी करते देखकर विचार किया कि वह न जाने किस राज घरानेकी सन्तति है। मैंने ब्राह्मण व क्षत्रियोंके बच्चोंको मेहतरोंके साथ जूठे टुकड़े खाते देखा है (शोक! शोक!!) यह दशा उस देशकी है जहांसे लाखों मन माल विदेश जाता है।"

"आपके प्रान्तमें दुर्भिक्ष है। आप परमात्माको व्यापक जानकर प्रतिज्ञा करें कि कोई बच्चा दूसरोंके हाथ न जाने पावेगा। इसके निमित्त केन्द्रिक समितियां स्थापित हों, स्थानान्तरमें अनाथाश्रम खोले जायँ। जो आप चुप रहेंगे तो बहुसंख्यक लोग आपके हाथसे निकल जायँगे।"

"प्रत्येक हिन्दू जानले कि हिन्दुओंकी संख्या घट रही है और उनका स्वास्थ्य गिर रहा है।

स्फुट ।

अकाल सम्बन्धमें लालाजीने अनेक मनुष्य शक्तिके काम करनेके अतिरिक्त राजके द्वारा भी बहुत उत्तम कामोंका प्रचार कराया। १९०१ के फेमिन कमीशनके समक्ष साक्षी देकर राजनियमोंमें निम्न परिवर्त्तन कराया:—

'अकालके दिनोंमें, राज अस्थाई रूपसे उन बच्चोंकी संरक्षक रहे जिन्हें वह संरक्षकोंसे परित्यक्त पावे और एक उचित समय तक अकाल बीत जानेपर अपनी रक्षासे पृथक् न करे। इस समयमें वह उनके (बच्चोंके) प्राकृतिक सरक्षकोंको खोजे जो यह न मिलें तो उनके सजाति भद्रोंको जो इन्हें लेना चाहें दे दे।' इसमें लालाजी और इतना बढ़ाते हैं कि 'इस (उक्त) बातके अनुसार आगेपर राजका कर्त्तव्य होगा कि उसी धर्म्मके प्रतिष्ठित जनोंको खोजे जो इन्हें लेना चाहें, यदि इनके असली संरक्षक न मिलें या मरगये हों और ऐसे अन्य भद्र भी न मिलें तो उन्हें विधर्मी संस्थाओंको न देकर उन्हें उनकी ही, सधर्मी संस्थाओंको राज सौंप दे।'

पुनश्च—'अकालके समयमें जो अनाथ मिलें, चाहे राजको मिलें अथवा किसी निजू दानशील संस्थाओंको मिलें सब राजके सामने उपस्थित किये जायँ और जब तक फेमिन कोडकी धारा २३४ के अनुसार कार्य्यवाही न होले उन्हें निजू अनाथाश्रमोंमें न रोका जाय।'

(२)

वायकाट।

इस दशामें जो हमपर पड़ी है हम न्यायपर हैं जो हम वही बात ग्रहण करें जो हमारे बङ्गाली भ्राताओंने ग्रहणकी है। यह व्याख्या हो चुकी है कि समस्त राजनैतिक संगठनानुसार आन्दोलन निष्फल होगये। 'प्रश्न उठता है कि क्या अंग्रेज लोगअपने मालोंके लिये खुले बाजार पानेके बदलेमें हमें पूरे २ राजनैतिक अधिकार देंगे। इसके उत्तरमें हां करना केवल भ्रम है। यदि मान लें कि इस तर्कमें बल है तो क्या हमें यह करना व्यर्थ होगा कि घरवाले (इङ्गलैंडस्थ) अंग्रेजोंके मनोंमें इन कष्टोंको अङ्कित करनेके लिये जो उनके प्रतिनिधियोंने हमको यहां दिये हैं, हम स्वदेशीका स्थानापन्न बहिष्कारको बनावें ? मान लें कि

इङ्गलैण्डके लोगोंको शक्ति है कि यहाँके कामोंको ठीक करें तो हम इन्हें यहांकी स्थितिकी ओर कैसे सचेत कर सकते हैं सिवा इसके कि उनकी थैलीपर सीधी धमकी दें। धन खोनेका तर्क वणिक जातिपर और सब बातसे अधिक प्रभाव डालता है।

राजभक्ति।

गवर्नमेण्टसे उसके मित्र व न्याय नीतिके प्रेमीकी भांति सरकारको सावधान करते हैं कि वह इस भय और कठिनताके मार्गमें पैर न धरे। आप लोगों, भद्र पुरुषोंको और सरकारको भी याद रहे कि जो जाति एकबार जाग उठे और ठीक ठीक जाग उठे तो फिर वह दबाई नहीं जा सकती। इसलिये बुद्धिमत्ता इसमें है, नीतिज्ञता इसमें है कि प्रजाका शासन ठीक रीतिपर किया जाय, उदार सिद्धान्तोंपर किया जाय, उन प्रजातन्त्र सिद्धान्तोंपर किया जाय जिनके कारण सारे संसारमें खल बली मच रही है।

देशभक्ति।

धर्म्मकी बात तो यह है कि दो बातें परस्पर विरुद्ध हैं अर्थात् अपने देशका प्रेम और विदेशी

शासनमें भक्ति। सिवा इसके कि देशभक्ति व राजभक्ति एक हो, विदेशी शासनको जो कोई प्यार करता है तो अपने देशको ही प्यार करता है। हो सकता है कि कोई देशभक्त दोनोंको एक करके जाने लेकिन आगे चल कर सारे देशमें इसे फैलानेके लिये एक शब्द एक नये अर्थका बोधक होगा, जो एक नई गढ़न्त होगी।

सामाजिक सुधार।

सामाजिक सुधार सुरक्षित और जहां तक सम्भव हो युक्ति युक्त व राष्ट्रीय रीतिपर चलना चाहिये। सबसे अच्छा और उत्तम समाज सुधारक तो वह होगा जो हिन्दुओंकी प्राचीन रीति नीतिको नवीन विद्याके प्रकाशमें पढ़ सकता हो, जो प्रकाशकी उन (रीति-नीति) पर पड़ा है। मैं वेधड़क कह सकता हूं सर्वांशमें प्राचीनकालको ज्योंका त्यों लौटा लाना असम्भवसी बात है जैसा कोई कोई अध्यात्मवादी और कतिपय आर्य्यसमाजी करना विचारते हैं, ऐसी बात असम्भव है और अनहोनीके लिये चेष्टा करना अपनी शक्तिका विनाश करना मात्र है। हमारे सधर्म्मी इस असम्भवताको और अपनी चेष्टाकी निष्फलताको समझ लेते और इस उद्योगसे रुक जाते तो अच्छा होता।

आपका भाव निर्वासनसे लौटनेपर कलकत्तेका व्याख्यान ।

समय कठिन है । हमारे सामने प्रकाशयुत प्रभात है तथापि भविष्यत अन्धकारमय दीखता है । क्योंकि दुर्भाग्यसे हम स्थितिकी उपयोगिताको नहीं समझते । हमारे प्यारे राष्ट्रके जीवन इतिहासमें यह कठिनताका समय है । जो ढँग हम अवलम्बन करते हैं वह सम्मिलित सामना करनेके पक्के विचार पर होना चाहिये । वर्त्तमानसे बढ़कर कभी इतनी एकताकी अवश्यकता न थी । क्योंकि हम सार्वजनिक शत्रुके साथ लड़ाईमें लग रहे हैं । सार्वजनिक शत्रुके सामने सामान महान हैं और हम अभी लड़ाईके द्वारपर हैं ।

हम पक्के होलें । हम अवश्य लड़ेंगे फल चाहे जो हो । मित्रो मैं सर्वज्ञ और परम दयालु दैवपर विश्वास रखता हूं । जो परमात्मा करता है भलेको ही करता है । स्यात् यह कष्ट हमारी आंख खोलने व दृढ़व्रत होनेके लिये हैं । यदि हम अपनी भूलोंसे (शिक्षा ग्रहण करें) यदि हम अपने अनुभवोंसे लाभ उठानेको तय्यार हों तो हमारे आरम्भका एक निश्चित विन्दु हो जहांसे आगे लड़ाई प्रचलित रक्खी

जाय। हमें निराश होनेका कोई कारण नहीं। मैं उनमेंसे हूं जो जातियोंकी समुन्नतिमें विश्वास रखने वाले हैं। किसीको भी निराश होनेका कारण नहीं है। हम वर्त्तमान दशामें हैं जो कि नीच दास वृत्ति है सही। अपने लोगोंकी दशा, मैं इससे अच्छी नहीं समझता। जब तक हम देशमें रहते हैं हमें अपनी हीनताका भान इतना नहीं होता जितना भारतके बाहर जानेसे। हमारा पक्का विचार है कि अपने राजनैतिक स्वत्व जीत लें और दासत्वसे मुक्त हों।

यदि हम अपना काम जारी रक्खें तो जगत्में कोई शक्ति नहीं जो हमारी उन्नति रोक सके। हां यदि हम और हमारे लोग एक हों।

लेखकका मत।

लोकमान्यमें मैं नहीं कहता कि निर्बलता व त्रुटियां नहीं हैं लेकिन हमें आपको आदर्श प्रकाशमें लेना है हमें वह चित्र खींचना है जो हमारी सन्तति को लाभदायक हों। तथापि इस अपराधसे बचनेके लिये कि हमने लालाजीका दोष इसलिये छिपाया कि वह भी मेरी ही भांति अग्रवाल व आर्य्यसमाजी हैं, हम उचित समझते हैं कि दो एक बात जो हमारे जाननेमें आई है कहदें। यह याद रहे कि लालाजीमें

ऐसी तुच्छ बातोंके सिवा कोई और लालच, छल, कपट, सिद्धान्त-विहीनताका दोष लेशमात्र भी नहीं है।

लोकमान्यकी निर्बलता काल्पनिक।

१-वकालत करना।

२-म्युनिसिपेल कमिश्नर बनना।

३ पूर्व कथनोंके विरुद्ध कांग्रेसमें सम्मिलित होना।

४-सूरत कांग्रेसके समय जाना।

५-समाचारपत्रोंपर नालिस करना।

किन्तु पाठक यह दोष एक भी दोष नहीं कहे जा सकते जिस समयका काम हो उसी समयके प्रकाश और आवश्यकतासे देखना उचित होता है।

हाँ एक अपराध आपके ऊपर बड़ा है यदि सत्य है क्योंकि हमें विश्वास नहीं होता परन्तु एक प्रतिष्ठित पुरुष कहते हैं कि आपने अपनी वक्तृतामें प्रातःस्मरणीय महात्मा तिलकदेवके सम्बन्धमें ढिठाई की और कहा कि "सूरतमें जो अन्याय उन्होंने किया उसीका प्रायश्चित वह मांडलेमें भोग रहे हैं।" यदि यह सत्य है तो हम कहेंगे कि लालाजीने तिलकको इतनी योग्यता, कर्मनिष्ठता, धर्मज्ञता, देशभक्ति और विद्वत्ता होते भी नहीं पहिचाना और जो कुछ आपने कहा अनजानपनसे कहा।

'राधे'

हमारी भूमि ।

भूमि हमारी । प्राण पियारी ॥
जो न कहै जन-प्रेम प्रफुल्लित
ऐसा नराधम-बुद्धि असंगत
है क्या कहीं । कहो तो सही—अचम्भा भारी ॥
बहु देश भ्रमा । निज भूमि फिरा ॥
नहीं हीय जला टुक प्रेमानल
कहिये तो भला-वह कूट अचल
मनवाला नर । है रूढ़ किधर—दुष्ट आचारी ॥
लहि नाम बड़ा । अभिमान भरा ॥
धन भी पाया-यद्‌पि यथेष्ट
धिक् धिक् माया-बल गुण श्रेष्ठ
कवि गुण धाम । न लेंगे नाम—छी (छी) तनधारी ॥
मिथ्या जीवन । धी बल यौवन ॥
नाम गँवाया-जो जीते दम
क्यों जग आया-अन्ध अधम
जो द्विगुन मरा । क्या काम सरा—आपाधारी ॥
जिस थल धूर । से उपजा कूर ॥
उसी ग्रामके-सब नर नार
स्वान चींगसे-दें य विसार
ज्यों वर्ण असत् । त्यों नाम मिटत—नर घा नारी ॥
(रैचे)